द्वितीय अध्याय

समय बोध : अर्थ परिभाषा और आयाम

2.1 समय : अर्थ एवं स्वरूप

समय एक प्रक्रिया है जो निरन्तर प्रवाहमान रहती है समय की अवधारणा ने कब जन्म लिया यह बता पाना असम्भव है। केवल कल्पना की जा सकती है कि जब मनुष्य ने सूर्य को निकलते एवं अस्त होते हुए देखा, मानव को जन्मते एवं काल के मुँह में जाते देखा तब मानव को आभास हुआ कि कुछ है जो कभी उसके साथ चलता है और कभी उसको पीछे की ओर धकेलता है। जो नदी की भाँति सदैव प्रवाह में बहता रहता है। इसी कल, आज और कल को मनुष्य ने 'समय' का नमा दिया। समय का शाब्दिक अर्थ – अवसर, काल, वक्त है। यह अंग्रेजी के Time (टाईम), शब्द का हिन्दी रूपान्तर है जिसका अर्थ है – ''कुछ करने की व्यवस्था करना या किसी घटना के लिए समय निश्चित करना है।''[1] हिन्दी बृहत शब्द कोष के अनुसार समय का अर्थ हैं काल शब्द से अभिप्राय एक व्यापक परिणाम के रूप में लिया जाता है। काल, वक्त, अवसर, फुरसत उपयुक्त काल आदि।''[2] डॉ॰ लीलावती देवी गुप्ता ''समय को कई प्रकार से विभाजित करती है। अतीत, वर्तमान और भविष्य तीन रूपों में सम्पूर्ण समय समाहित है इन तीनों कालों के अन्तर्गत अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। धार्मिक विचारानुसार युग को चार भागों में विभक्त किया गया है – सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर युग और कलियुग। परन्तु ये चारो युग दीर्घकाल या समय के परिचायक हैं।''[3] यहाँ लेखिका भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों को समय में समाहित दर्शाया है। वे युगों को समय का परिचायक स्वीकारती हैं।

समय की अवधारणा :

समय को लेकर अनेक अवधारणाएँ प्रचलित हैं। वैदिक काल में समय को लेकर अवधारणा के संबंध में डॉ॰ राधाकृष्णन ने लिखा है ''ब्रह्मारण्यक उपनिषद में ऋषि याज्ञवल्क्य भी समय के बारे में वैदिक दृष्टिकोण को महत्त्व देते हुए कहते है – ''हे गार्गी व जो अंतरिक्ष से ऊपर है और वह जो पृथ्वी के भी नीचे है, वह जिसे मनुष्य भूत, वर्तमान और भविष्य कहते हैं। उस सब की रचना भीतर और बाहर जिसके अन्तर्गत हुई? हे गार्गी! सत्य के अन्दर इस अनिवासी के अन्दर, सब देश के बाहर और अन्दर गुथा हुआ है। वह समय है।''[4] पौराणिक ग्रन्थों में समय को ही परमसत्ता एवं सर्वशक्तिमान माना गया है। ऋग्वेद में कहा गया है –

---

[1] सम्पा॰ डॉ॰ सुरेश कुमार, डॉ॰ रामनाथ सहाय, ऑक्सफोर्ड इंग्लिश–इंग्लिश–हिन्दी शब्दकोश, पृ॰ 1248

[2] सम्पा॰ कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, बृहत हिन्दी कोश, पृ॰ 1200

[3] डॉ॰ लीला देवी गुप्ता, प्रसाद साहित्य में युग चेतना, पृ॰ 15

[4] भारतीय दर्शन खण्ड–1, पृ॰ 6, 7

''वह काल देश की आयु मृत्यु और अमरता आदि सबकी पहुँच के बाहर और उनसे परे है। हम इसकी ठीक–ठीक व्याख्या नहीं कर सकते, सिवाय इसके की अस्तित्व रखती है।''[5]

समय की अवधारणा दर्शन शास्त्र में भिन्न है। प्लेटो जैसे दार्शनिक घटनाओं एवं परिवर्तन के आधार पर समय को परिभाषित करते हैं वहीं अरस्तु जैसे दार्शनिक घटनाओं को समय के भीतर ही घटते हुए मानते है। ''टाइमस में प्लेटो' ने समय को अनन्त की संज्ञा दी है उनके अनुसार – ''समय अनन्त की गत्यात्मकता को दर्शाने वाली अपरिमेय सत्ता है।''[6] अर्थात् समय की सत्ता अपरिमेय है जिसमें सृष्टि की समस्त घटनाएँ घटित होती हैं। ये समय को अनन्त का पर्याय स्वीकार करते हुए स्पष्ट करते हैं। ''प्राणी मात्र की प्राकृतिक क्षमताएं अपरिमेय थी यह संभव नहीं था वह उन क्षमताओं को ब्रह्माण्ड पर पूरी तरह न्योछावर कर दे, बजाय इसके उसने अपरिमेय की चलती फिरती छवि बनाने का फैसला किया। उसने स्वर्ग से ऐसी 'अपिरमेय छवि बनाने का आदेश दिया। तब स्वर्ग ने वह बनाया जिसे हम समय कहते है।''[7] यहाँ प्लेटो को समय के प्रति आदर्शवादी दृष्टिकोण दिखाई देता हैं। वहीं अरस्तु इसकी व्यवहारिकता पर बल देते हैं। मानव मस्तिष्क एवं समय की अन्तः निर्भरता पर मंथन करते हैं। अरस्तु की समय संबधी अवधारणा जनमानस की सोच के समीप एवं व्यवहारिक है। इनके अनुसार समय की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है। जगत की प्रत्येक घटना समय का आभास कराती है। यदि गहनता से विचार किया जाए तो अरस्तु भी समय को गतिशीलता का लक्षण स्वीकार करते हुए प्लेटों की समय संबंधित मान्यताओं का सम्मान करते है। डॉ॰ जैनेन्द्र ने समय की अवधारणा का स्पष्टीकरण देते हुए लिखा है – ''समय हमारी सृष्टि है। सत् तो अखण्ड है परन्तु हमारी चेतना खण्डित है। उस खण्डित चेतना द्वारा जब हम अस्ति को ग्रहण करते हैं तो अस्तित्व पहले तो कालाकाश में विभाजित होता है और फिर काल आगत, विगत और अनागत में त्रिविधा विभक्त हो आता है। वर्तमान के साथ भूत–भविष्य की भी सृष्टि होती है। जड़ के लिए वर्तमान के अतिरिक्त कुछ नहीं है किन्तु चिद्बोध, भूत, भविष्य की दिशाओं में भी जाने के बाध्य है।''[8] इनके अनुसार चेतना समय को सार्थकता प्रदान करती है चेतना हमें होने या करने का आभास कराती है। – ''समय वह है, जिसमें हम होते हैं और करते हैं हम अर्थात वह अहं–चैत्य जो समय के बीच एक दिन उदित होता है और फिर एक दिन क्षरित हो जाता है अर्थात् समय संभव बनाता है कि हम जैसे जीव उपजते एवं विलीन होते रहे और विकास की हमारे निमित्त से अपनी सिद्धि होती जाय''[9] इनके अनुसार समय का चक्र चलता रहता है जिसमें जन–मानस सुख–दुख की अनुभूति करता रहता है। इन्हीं का समर्थन करते हुए डॉ॰

---

[5] ऋग्वेद 3/11/17
[6] अनुवादक डीमंड ली, टाइमस में प्लेटो, पृ॰ 235
[7] वहीं, पृ॰ 240
[8] डॉ॰ जैनेन्द्र कुमार, समय, समस्या और सिद्धान्त, पृ॰ 3
[9] वही, पृ॰ 3, 4

अखिलेश भी स्वीकारते हैं – ''वास्तविकता के धरातल पर जो यथार्थ सामाजिक दृश्य है दुनिया का, वही समय की काया है, उसी में समय बसता है... समय बदला हुआ है जाहिर है साहित्य भी बदलेगा और बदल भी रहा है।''[10] इनके विचार से समहमत हुआ जा सकता है कि समय परिवर्तनशील है प्राचीन साहित्य एवं नवीन साहित्य में अन्तर उसका स्पष्ट उदाहरण है। समय के स्वरूप को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

2.1.1 घटना–सापेक्ष

जब घटनाओं को केन्द्र में रखकर समय का अवलोकन किया जाता है यह घटना सापेक्ष है जिसने साहित्य को जन्म दिया जिसमें घटना अनुसार समय को विभक्त कर उसे समझा जाता है। इसमें घटना ही केन्द्र में रहती है जो चिरकाल तक अपना अस्तित्व बनाए रखती है जिसे सुनते ही उस समय का आभास होता है जिस समय में वह घटना घटी है। यहाँ घटना ही सर्वोत्तम होती है उदाहरण स्वरूप 1857 की क्रान्ति, जलियाँवाला बाग का हत्याकांड आदि का नाम सुनते ही हमें उस समय का आभास हो जाता है जब से घटनाएँ घटित हुई थी। डॉ॰ मदनमोहन मालवीय के अनुसार महाभारत का युद्ध एक ऐसी महत्वपूर्ण घटना है। जिसका उस समय पर गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। इनके अनुसार ''महाभारत में पाण्डवों द्वारा बारह वर्ष का वनवास एवं एक वर्ष का अज्ञातवास अपने समय पर उतना प्रभाव अंकित नहीं कर पाया जितना मात्र अ्टठारह दिन का अनवत भंयकर युद्ध जिसकी विनाशलीला के चिह्न बाद में कितने भंयकर चित्रित हुए हैं।''[11] इसका एक अन्य उदाहरण हिरोशिमा पर पड़ा परमाणु बम है जिस घटना का प्रभाव वहाँ आज भी परिलक्षित होता है इस प्रकार इसमें घटना की ही प्रधानता होती है।

2.1.2 काल सापेक्ष :

मानव की आदिम अवस्था से लेकर आज तक समय को भूत, वर्तमान एवं भविष्य से जोड़कर सूचित किया जाता रहा है इन सभी में जो आर्थिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियाँ रही हैं वे एक दूसरे काल से कुछ–न–कुछ भिन्नता भी रखती है और समानता भी। व्यक्ति–चेतना या समाज–चेतना के आधार पर भी परिवेशगत रूपों में कुछ परिवर्तन देखा जा सकता है। इसमें समय को केन्द्र बिन्दु मानकर घटनाओं का वर्णन किया जाता है। इसने दर्शनशास्त्र को बढ़ावा दिया है। इसमें समय ही सर्वोत्तम हैं। सारी घटनाएं समय के इर्द–गिर्द घुमती हैं। उदाहरण स्वरूप–प्राचीनकाल में मानव आग के लिए पत्थर के टुकड़ों को रगड़ता था। समय की अवधारणा का काल से जुड़ाव इसकी अवधारणा है।

---

[10] सम्पा॰ बद्री नारायण, साहित्य और समय (लेख) डॉ॰ अखिलेश, पृ॰ 97–98
[11] मोहन भारद्वाज, आधुनिक हिन्दी नाटकों में युग बोध, पृ॰ 2

2.1.3 व्यक्ति सापेक्ष :

व्यक्ति सापेक्ष समय अपरिहार्य रूप से व्यक्ति से जुड़ा होता है। जो समय व्यक्ति सापेक्ष होता है। वह किसी महान व्यक्ति के जीवन चरित्र के गौरव के कारण उसी के नाम पर लोक प्रचलित हो जाता है। जैसे – बौद्ध काल (बुद्ध का समय) इसमें कोई महापुरूष अपने समय को इतना प्रभावित करता है कि वह समय खण्ड उसी के नाम से प्रचलित हो जाता हैं उदाहणस्वरूप – भारतेन्दु युग, प्रेमचन्द का समय, व्यक्ति सापेक्षता को महत्त्व देते हैं प्रत्येक साहित्यकार अपने देशकाल से जुड़ा हुआ होता है। वह अपने समय की परिस्थितियों से अलग नहीं रह सकता। प्रेमचन्द ने इसे इस प्रकार परिभाषित किया है – ''साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित हुआ करता है। जब कोई लहर देश में उठती है और इस तीव्र विकलता से वह रो उठता है। परन्तु उसके क्रन्दन में व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक होता है।''[12] जब साहित्यकार अपने परिवेशगत मूल्यों का उद्‌घाटन करता है वहीं वास्तविक साहित्य कहलाता है। इसी संदर्भ में डॉ॰ देवराज जी के विचार है – ''साहित्यकार मानवीय परिवेशगत मूल्यों के उद्‌घाटन का प्रयत्न करता है और उसका यही प्रयत्न साहित्य–सृजन कहलाता है।''[13] इस प्रकार व्यक्ति सापेक्ष समय में घटनाओं एवं समय का केन्द्र बिन्दु व्यक्ति ही होता है।

इस प्रकार समय बोध में विभिन्न गतिविधियों का समग्र रूप में देखा जा सकता है। चाहे वह घटना, काल या व्यक्ति किसी से भी जुड़ा हुआ है। समय चाहे घटना सापेक्ष हो या व्यक्ति सापेक्ष असीमता से प्रकट करता है। दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले लोकप्रिय धारावाहिक 'महाभारत' में उद्घोषक ''हरीश भिमाणी'' की गुंजती हुई आवाज 'मैं समय हूँ' इसी निस्सीमता का बखान करती है। समय परिस्थिति सापेक्ष भी होता है। उसकी सीधी अनुभूति का कोई माध्यम नहीं है इसका आभास घटनाओं के माध्यम से ही होता है। जिस प्रकार धनत्व एवं आयतन आदि को पदार्थ से अलग करके देख पाना संभव नहीं है, उसी प्रकार घटनाओं एवं परिवर्तन को समय से अलग कर पाना संभव नहीं है।

निष्कर्ष रूप कहा जा सकता है कि समय निरन्तर प्रवाहमान होने वाली प्रक्रिया है। साहित्यकार इसे परमतत्त्व मानकर इसकी महिमा का बखान करते हैं। दार्शनिकों ने समय को केन्द्र में रखकर जीवन रहस्यों की व्याख्या की है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार समय का प्रभाव व्यक्ति की मनः स्थिति पर पड़ता है उनके अनुसार समय व्यक्तियों पर अलग–अलग प्रभाव डालता है। इस सभी विचारधाराओं एवं अवधारणाओं के बीच समय की अपनी सार्थकता है। समय निरंतर प्रवाहित होता रहता है। समय वायु की भांति अदृश्य है परन्तु घटनाओं एवं

---

[12] प्रेमचन्द, साहित्य का उद्‌देश्य, पृ॰ 24, 25
[13] डॉ॰ देवराज, साहित्य चिंता, पृ॰ 68

परिवर्तनों के माध्यम से यह हमारे समक्ष प्रत्यक्ष होता रहता है। समय को समुचित ढंग से समझने के लिए उसका ज्ञान एवं बोध होना अनिवार्य है।

2.2 बोध : अर्थ एवं परिभाषा :

बोध शब्द संस्कृत की 'बुध्' धातु में 'छञ्' प्रत्यय के योग से बना है। जिसका सामान्य अर्थ है – ज्ञान एवं जानकारी। बोध शब्द अंग्रेजी के (Perception) 'परसॅप्शन' शब्द का पर्याय है। जिसका अर्थ है – इन्द्रियों द्वारा ग्रहण या ज्ञान, एक विशेष दृष्टिकोण, राय या मत।''[14] मानक हिन्दी कोश के अनुसार बोध – ''किसी वस्तु की विस्तृत जानकारी बोध कहलाती है। किसी के अस्तित्व, प्रकार, स्वरूप आदि का होने वाला मानसिक भाव, या शब्दों द्वारा होने वाला किसी बात का ज्ञान बोध है।''[15] अतः बुद्धि के कारण होने वाले ज्ञान की धारणा को बोध कहते हैं। संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ में बोध के अर्थ इस प्रकार दिए गए हैं – जानना, समझना, पहचानना, ध्यानदेना, सोचना, विचारना, जागना या होश में आना।''[16] डॉ॰ रामविलास शर्मा के अनुसार – ''वैज्ञानिक भौतिकतावाद के अनुसार मनुष्य प्रकृति की उपज और बोध को प्रकृति के एक अंश का गुण मात्र स्वीकार करते हैं।''[17] अतः बोध विवेक एवं बुद्धि से नियत है। जो समय के साथ–साथ परिवर्तित होता रहता है बोध रूपी शक्ति मानव मस्तिष्क की देन है। डॉ॰ बैजनाथ प्रसाद शुक्ल बोध को चेतना का समानार्थक स्वीकारते है। – ''चेतना प्राणी में रहने वाला वह तत्त्व है जो उन्हें बोध से परिपूर्ण मानकर जीवधारी सिद्ध करता है। इस प्रकार आत्मा चैतन्य वह सत्य है जिसका ज्ञान मनुष्य को पशु से अलग करता है।''[18] इनके अनुसार बोध एवं चेतना के कारण ही मनुष्य जानवरों से श्रेष्ठ माना जाता है।

बोध एक जीवन्त प्रक्रिया है जिसका संबंध बुद्धिजीवी वर्ग एवं साहित्यकार से होता है। जिससे वह अपने समय के प्रश्नों के तीखेपन को समझ पाता है तथा उन पर मंथन करने के पश्चात् अपने साहित्य के माध्यम से उन्हें पाठकों तक पहुँचा पाता है। मानव की सभी क्रियाओं एवं गतिशील विधियों (प्रवृत्तियों) का मूल कारण बोध को स्वीकारते हुए डॉ॰ हुकुमचन्द राजपाल ने लिखा है – ''बोध के कारण व्यक्ति में चेतना, विकास एवं संघर्ष की स्थिति जन्मती है। बोध शब्द इन्द्रियानुभूति के माध्यम से वस्तु की स्थिति का परिज्ञान कराता है।''[19] प्रत्येक साहित्यकार अपने समय की परिस्थितियों, परिवेश, घटनाओं का वर्णन अपने साहित्य में इसलिए करता है, क्योंकि वह अपने समय से जुड़ा हुआ हैं। प्रत्येक देश व समाज का अपना बोध होता है।

---

[14] Editors; Dr. Suresh Kumar, Dr. Ramanath Sahai, Oxford English-English-Hindi Dictionary, P - 880
[15] सम्पादक, रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश, पृ॰ 174
[16] सम्पा॰ चतुर्वेदी एवं झा, संस्कृत–शब्दार्थ–कौस्तुभ, पृ॰ 808
[17] डॉ॰ रामविलास शर्मा, आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 4
[18] डॉ॰ बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना, पृ॰ 6
[19] डॉ॰ हुकुमचन्द राजपाल, विविध बोध, नए हस्ताक्षर, पृ॰20

सामाजिक, राजनैतिक धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ मिलकर एक दौर बनाती है जिसे समय विशेष का नाम दे दिया जाता है। समय में बदलाव के साथ ही उस समय का बोध भी परिवर्तित होता रहता है। डॉ॰ मोहिनी श्रीवास्तव ने बोध को इस प्रकार परिभाषित किया है। ''चेतना प्राणी मात्र में रहने वाला वह तत्त्व है, जो उसे निर्जीव एवं जड़ पदार्थो से भिन्न करता है और उन्हें चैत्य सम्पन्न बनाकर जीवधारी सिद्ध करता है।''[20] इन्होंने चेतना विहीन मानव को जड़ पदार्थ के तुल्य स्वीकारा है।

साहित्यकार अपने बोध द्वारा ही समाज में निहित समस्याओं के समाधान खोजने में प्रयासरत रहता है। डॉ॰ रणधीर सिन्हा के शब्दानुसार – ''वह निरन्तर ही काव्य–प्रेरणा को युग से ग्रहण करता रहता है। वह जो भी ग्रहण करता है। संवेदनशीलता और परिष्कृति के माध्यम से।''[21] अतः चेतना (बोध) समय को सार्थकता प्रदान करता है। कोई भी रचनाकार अपने यथार्थ समय की विद्रूपताओं, जटिलताओं एवं विकृतियों से जूझने के बाद ही आदर्श के नए प्रतिमान स्थापित करता है। डॉ॰ वर्मा के मतानुसार – ''रचनाकार के मन में अपने समय की समस्याओं का दबाव बना रहता हैं। कोई भी रचनाकार अपने युग से ऊपर उठकर भाव सत्यों या मूल्यों की खोज करता है। जिसका उसके समकालिक परिवेश में अभाव है और जिनकी उपलब्धि से युगीन विकृतियों का सांस्कृतिक समाधान खोजा जा सकता है। इस प्रकार युगबोध के तीखेपन में से ही कवि की मनीषा उदात्त जीवन मूल्यों का अनुसंधान करती है।''[22] इनके अनुसार बुद्धि एवं विवेक के द्वारा ही रचनाकार अपने समय की जटिलताओं से जूझ पाता यह विकसित बोध द्वारा ही संभव है।

निष्कर्षतः बोध रूपी शक्ति मानव मस्तिष्क की उपज है। बोध को विकसित करने के लिए चेतना एवं बाह्य जगत से संपृक्त होना अनिवार्य है। बोध केवल चिंतन द्वारा ही उत्पन्न नहीं होता, मनुष्य का प्रत्यक्ष अनुभव भी बोध का आधार है। इससे मानव के ज्ञान को समृद्धि मिलती है। बोध समय परिवर्तन के साथ–साथ बदलने वाली प्रक्रिया है। सभी का बोध अपने दृष्टिकोण के अनुसार भिन्न हो सकता है। प्रत्येक समाज व देश का अपना बौद्ध होता है। जो समयानुसार परिवर्तनशील है। अतः बोध हमें अपने समय के यथार्थ एवं आदर्शो से परिचित कराता है।

2.2 समय बोध : अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप :

समयबोध – समय और बोध का समन्वित शब्द युग्म है। समय की कल्पना बहुत प्राचीन है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भी समय का उल्लेख किया गया है रामचन्द्र वर्मा ने मानक

---

[20] डॉ॰ मोहिनी श्रीवास्तव, खड़ी बोली के राम काव्य में युग चेतना, पृ॰1
[21] डॉ॰ रणधीर सिन्हा, कवि बिहारी लाल और उनका युग, पृ॰ 38
[22] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, तुलसी साहित्य में शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान, पृ॰ 27

हिन्दी कोश में समय को परिभाषित करते हुए इस प्रकार लिखा है – ''समयबोध शब्द में 'समय और बोध' का समाहार हैं।''[23] प्रत्येक समय के साहित्यकार की सर्जनशीलता भिन्न होती है। जिसमें साहित्यकार अपने समय की परिस्थितियाँ, परिवेश विषयक चिंतन करता है। इस प्रकार विशेष प्रवृत्तियों के उत्थान–पतन की समयावधि को 'समय–खण्ड' की संज्ञा दी जाती है। बोध शब्द ज्ञान व जानकारी के संदर्भ में ग्राह्य हैं। बोध शब्द अंग्रेजी के sense शब्द के समानार्थक के रूप में मिलता है जिसका अर्थ 'विमर्श–शक्ति' है। अतः समय बोध अपने परिवेश परिस्थितियों की विशेषताओं एवं विद्रूपताओं की गहन जानकारी एवं विमर्श शक्ति है जैनेन्द्र कुमार बोध को महत्त्व देते हुए बोध के कारण ही समय की सत्ता को स्वीकारा है। – ''समय में यदि अस्तित्व है, गुणत्व है, तो हमसे ही वह वहाँ पहुँचा हो सकता है। कारण, काल की स्वयं सिद्ध सत्ता नहीं है। मानना हो तो काल को निर्गुण भले ही मान लीजिये, पर वह होने तक का गुण उसे हमसे ही प्राप्त होता है कारण होने की प्रतीति हमसें बाहर है ही नहीं।''[24] जिस प्रकार बोध द्वारा ही समय की प्रतिति संभव है उसी प्रकार समय के साथ–साथ बोध एवं चेतना का विकास ही होता रहता है। अर्थात समय के साथ बोध संपृक्त है दोनों को अलग नहीं माना जा सकता।

समय प्रतिक्षण जीवन केा सार्थक करता रहता है वह अनावश्यक को गर्त में भेजता और आवश्यक का उदय करता हैं। किसी भी समाज में समय एक जैसा नहीं होता, एक ही साथ एक ही समय में बहुत सारे समुदाय अलग–अलग समय बोधों में जी रहे होते हैं। उदाहरणस्वरूप समाज के सीमान्त पर रहने वाले आदिवासी एवं दलित समूहों के लिए आज का समय वहीं नहीं है जो किसी महानगर में रहने वाले नागरिक का है इसी अलगाव को प्रदर्शित करते हुए मैनेजर पाण्डेय ने समय बोध की परिभाषा को इस प्रकार व्यक्त किया है – ''मुगल काल में स्त्रियों ने फारसी में ज्यादा कविताओं का निर्माण किया जबकि मुगल काल के अधिकांश शासकों ने हिन्दी में कविताएँ लिखी है ... मध्यकाल की संस्कृतियों को समझने के लिए उनकी लोक संस्कृतियों को समझना अनिवार्य है। आज हम जिस समय में जी रहे हैं, वह बहुत सारी विडम्बनाओं से भरा हुआ समय है।''[25] अर्थात् समय परिवर्तनशील है। वह सभी पर अपनी छाप छोड़ता है उसका बोध प्रत्येक मनुष्य की दृष्टि से भिन्न हो सकता है परन्तु एक साहित्यकार अपने परिवेश एवं अपने समय का बाह्य एवं आंतरिक दोनों रूपों में गहन चिंतन कर बोध द्वारा ही उसे साहित्य में उकेरता है। तभी सामाजिक संदर्भो में समय का अर्थ निर्मित होता है। डॉ॰ बद्रीनारायण के अनुसार समय की अवधारणा को एक ही रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। उन्होंने अपनी पुस्तक 'साहित्य और समय' की भूमिका में समय बोध को

---

[23] डॉ॰ रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश, खण्ड चार, पृ॰ 442
[24] डॉ॰ जैनेन्द्र कुमार, समय, समस्या और सिद्धान्त, पृ॰ 5
[25] सम्पा॰ बद्रीनारायण, साहित्य और समय (लेख) डॉ॰ मैनेजर पाण्डेय, पृ॰ 114

सुनियोजित ढंग से अभिव्यक्त किया, ''समय खण्ड अपने आप में एक आइसोलेटेड खण्ड नहीं होता। उक्त समय में भी अनेक समय बोध अनेक समुदायों में सक्रिय होते हैं। ये समय बोध आमने सामने न होकर अगल बगल रहते हैं।... अनेक पीढ़ियाँ जो अनेक समय बोधों के साथ एक ही समय में सक्रिय होती है। उनका आपसी संबध बनाम एवं टकराव का न होकर आपसी सह अंत संवाद का होता है।... अगल–बगल रह रहे अनेक समय बोध मिलकर एक निश्चित समय खण्ड का अर्थ रचते हैं।''[26]

समय की व्यापकता को देखते हुए उसके अध्ययन के लिए हम समय को समय खण्डों में विभक्त कर देते है। इस समय खण्ड या समय विशेष को युग की संज्ञा दी जाती है। हिन्दी आचार्यो ने भी 'एक समय विशेष को युग की संज्ञा प्रदान करते हुए युग को समय का द्योतक माना है। ''युग काल प्रवाह का वह भाग है, जो किसी कार्य विशेष या घटना से जुड़कर ही युग कहलाता है।''[27] साहित्यकार वर्तमान एवं अतीत की पृष्ठभूमि पर अपने साहित्य का निर्माण करते समय या युग के लिए नये मूल्यों के आयाम प्रस्तुत करते हैं तथा एक अच्छे समय की कामना करते हैं बैजनाथ प्रसाद शुक्ल के मतानुसार ''एक युग दूसरे युग को जो कुछ दे जाता है, उसी आदान–प्रदान से नये–नये युग भविष्य की ओर बढ़ते हैं।''[28] डॉ॰ रणधीर सिंह सिन्हा अपने समय की आंतरिक एवं बाह्य स्थितियों के बोध को स्वीकारते हुए स्प्ष्ट करते हैं कि – ''युग समाज की कालगत स्थितियों का प्रतिनिधित्व करता है। समाज सभ्यता संस्कृति, कला, साहित्य, इतिहास आदि की आंतरिक एवं बाह्यय स्थितियों का बोधक युग होता है।''[29] समय बोध एक विशेष समय खण्ड में सीमित रहकर ही अपना परिचय देने में समर्थ है।

निष्कर्षतः समय बोध अपने परिवेश, परिदृश्य, परिस्थितियों विशेषताओं एवं व्रिदूपताओं का सम्यक ज्ञान है। यह एक दोहरी प्रक्रिया है जहाँ एक तरफ रचनाकार अपने समय के यथार्थ को गहनतापूर्वक देखता है वहीं दूसरी तरफ अपने समय की कुरीतियों, व्रिदूपताओं, विकृतियों, विकारों एवं विसंगतियों का सम्यक् समाधान खोजने के लिए प्रयासरत रहता है। इस प्रकार समय और बोध दोनों मिलकर एक दूसरे को सार्थकता प्रदान करते हैं।

2.3.1 समय बोध : परम्परा एवं पृष्ठभूमि :

प्रत्येक साहित्यकार नवीन साहित्य का सृजन करते हुए प्राचीन साहित्य से प्रेरणा प्राप्त करता है। तभी वह अपने वर्तमान एवं अतीत समय से संबंधी स्थापित करता हुआ अपने समय का प्रतिनिधि साहित्यकार कहलाता है। डॉ॰ बैजनाथ प्रसाद शुक्ल के अनुसार ''तभी उसका

---

[26] सम्पा॰, ब्रदी नारायण, साहित्य और समय, भूमिका, पृ॰ 8
[27] सम्पा॰, नवल जी, नालन्दा विशाल शब्द सागर, पृ॰ 852
[28] डॉ॰ बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना, पृ॰ 6
[29] डॉ॰ रणधीर सिंह सिन्हा, कवि बिहारी और उनका युग, पृ॰ 89

साहित्य 'युग–साहित्य' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।''[30] अतः कोई भी बोध सम्पन्न साहित्यकार अपनी परम्परा एवं अपनी पृष्ठभूमि से विमुक्त नहीं हो सकता। प्रत्येक समय खण्ड की निर्मिति में परम्परा एवं अपने समय की परिवेश, परिस्थितियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

परम्परा अत्यन्त व्यापक शब्द है जिसका संबंध जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से होता है। प्रभाकर माचवे ''परम्परा का अर्थ पूववर्ती परिपाटी पर लेते हुए इसे रूढ़ि का परिचायक मानते हैं।''[31] वहीं डॉ॰ बैजनाथ ने परम्परा की नीवं को गहरी मानते हुए कहा है – '' परम्परा की नीवं काफी गहरे में रखी शिला पर आधारित होती है जो काल के प्रभाव से भी नष्ट नहीं हो सकती।''[32] अतः परम्परा का अर्थ रूढ़ि से नहीं लिया जा सकता क्योंकि रूढ़ि का अर्थ गली सड़ी पद्धतियों एवं व्यवहारों से हुआ करता है। टी.एस. इलियट की मान्यता है कि ''परम्परा मूलतः रूढ़िवादी, सैद्धान्तिकी, विश्वासों की मान्यता नहीं, बल्कि उसका निर्माण जीवन्त विश्वासों में होता है।''[33] जब कोई साहित्यकार किसी रचना का निर्माण करता है तो उसका कथ्य किसी न किसी रूप से अपने समय से अवश्य जुड़ा रहता है। 'समय बोध में यह ध्यान रखना अनिवार्य है कि कथ्य सदैव परम्परा से प्राप्त आदर्शो के सर्वथा अनुकूल हो। अन्यथा उसका मूल्याँकन एवं विवेचन एकांगी एवं अविश्वसनीय हो जाता है। इसी संदर्भ में डॉ॰ बैजनाथ प्रसाद शुक्ल का यह वक्तव्य उल्लेखनीय है। – ''मानव जीवन के साथ परम्पराएँ अभिन्न रूप से जुड़ी रहती हैं। साहित्य भी परम्पराओं से मुक्त नहीं होता, क्योंकि वह तो मानव जीवन की अनुकृति है, जो स्वयं परम्पराओं से ग्रस्त है यदि कभी साहित्य की परम्परा अपने मूलभूत रूप में अविश्वसनीय हो जाती है, तो नए मूल्य शंका के सहारे चलने लगते हैं। ऐसे समय में कोई भी ऐसी मान्यता नहीं रह जाती, जिसके सहारे साहित्य अग्रगामी हो सके, फलतः औचित्य के आदर्शच्युत हो अपना सीमा विक्रमण करने लगते हें और साहित्य तथा काव्य में उच्छृंखलता का जन्म होता है। अस्तु साहित्य एवं काव्य में औचित्य, मर्यादा एवं पूर्ववर्ती परिपाटी आदि को सुरक्षित रखने के लिए निर्विवाद रूप से परम्पराओं का अत्यधिक महत्त्व है।''[34] इस प्रकार पम्परा का साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है।

पृष्ठभूमि किसी भी समय–खण्ड की वह नींव है जिस पर उस समय खण्ड का भव्य महल निर्मित होता है। पृष्ठभूमि भूतकाल से भिन्नता को दर्शाती है। वर्तमान को संवारती है और भविष्य को स्पर्श करती है यद्यपि वह भविष्य नहीं है। ''डॉ॰ शुक्ल के अनुसार – ''वर्तमान जनजीवन को समझने के लिए युगीन पृष्ठभूमि से परिचित होना आवश्यक है पृष्ठभूमि की प्राण

---

[30] डॉ॰ बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना, पृ॰ 19
[31] सम्पा॰ धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश भाग–2, पृ॰ 40
[32] डॉ॰ बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग–चेतना, पृ॰ 13
[33] सम्पा॰ जॉन हेवर्ड, टी॰ एस॰ इलियट, सिलैक्टिड प्रोज, पृ॰ 20
[34] डॉ॰ बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना, पृ॰13

तत्त्व मानी जाने वाली परिस्थितियों के बदलने से युगान्त उपस्थित होता है और नया युग आरम्भ होता है, जिसकी आधार पीठिका विगत से भिन्न हुआ करती है।''[35] पृष्ठभूमि अपने समय का दर्पण होती है। जिसके अभाव में समय बोध असंभव है। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं साहित्यिक परिस्थितियां मिलकर ही पृष्ठभूमि का निर्माण करती है। ''पृष्ठभूमि के बिना समय बोध नहीं हो सकता है। जो साहित्यकार की प्राण शक्ति है, उसके बिना तो वह जीवित नहीं रह सकता और न ही साहित्य सृजन कर सकता है।''[36] इन्होंने पृष्ठभूमि को साहित्यकार की प्राणशक्ति के रूप में विवेचित किया है।

परम्परा एवं पृष्ठभूमि के अभाव में समय बोध असम्भव है। जहाँ समय बोध अपनी परमपराओं से जुड़ा हुआ है वहीं वह अपने परिवेश एवं परिस्थितियों से भी विलग नहीं है। जहाँ परम्परा का संबध अतीत से दर्शाया जाता है वहीं पृष्ठभूमि का संबध वर्तमान से माना जाता है। पृष्ठभूमि अपने वर्तमान के साथ–साथ अपने अतीत से भी संबंधित होती है। पृष्ठभूमि के निर्माण में परम्पराओं की अवहेलना नहीं की जा सकती। साहित्यकार अपने समय का यथार्थ द्रष्टा होने के साथ–साथ भविष्य द्रष्टा भी होता है। वह ऐसे साहित्य का निर्माण करता है जो पारदर्शिता से युक्त हो। जिसमें न केवल गली सड़ी परम्पराएँ हो और न ही केवल नवीनता। बल्कि उसमें परम्परा एवं वर्तमान का ऐसा सामंजस्य हो जिससे कालजयी रचना निर्मित हो। यदि चलते हुए मनुष्य का पिछला पैर परम्परा है तो अगला पैर आधुनिकता। जो एक–दूसरे पर आधारित हैं जिनका एक दूसरे के बिना कोई अस्तित्व नहीं है। इस प्रकार समय बोध में परम्परा और पृष्ठभूमि जैसे घटकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि समय बोध एक बहुआयामी एवं व्यापक शब्द है जिसे परिभाषाओं की सीमाओं में बांधना कठिन है। इस विषय में डॉ॰ महादेवी वर्मा का मन्तव्य इस प्रकार है – ''इतना निश्चित है कि यह एक काल सापेक्ष धारा है जिसकी भाव–चेतना अपने समय के परिवेश एवं परम्परा दोनों से जुड़ी रहती है।... युगबोध विशेष समय खण्ड में परिचित रहकर ही अपना परिचय देने में समर्थ है।''[37] इस प्रकार ये समय–खण्ड को युग की संज्ञा से अभिहित करती हैं।

2.3.2 समय बोध एवं परिवेशगत परिस्थितियाँ :

साहित्य एंव समाज का अविच्छिन संबंध है। साहित्यकार अपने समय के परिवेश परिस्थितियों तथा विद्रूपताओं से अछूता नहीं रह सकता। इस विषय में डॉ॰ रामविलास शर्मा का कथन उल्लेखनीय है। – ''साहित्य में व्यक्ति के भावों की अभिव्यक्ति मिलती है और भावों का

---

[35] डॉ॰ बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना, पृ॰ 14
[36] वही, पृ॰ 14
[37] महादेवी वर्मा, संधिनी, पृ॰ 9

समाज से अविच्छेद संबंध है। अतः साहित्य समाज से पृथक होकर जीवित नहीं रह सकता। साहित्यकार समाज से ही भाव एवं विचार ग्रहण कर अपने काव्य में सौन्दर्य–सृष्टि करता है। कलाकार जिस सौन्दर्य की सृष्टि करता है वह समाज निरपेक्ष किसी व्यक्ति की कल्पना की उपज नहीं हैं, वरन् सामाजिक विकास से उसका घनिष्ठ संबंध होता है।''[38] उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्यकार अपने साहित्य के सृजन के लिए उपयुक्त सामग्री समाज से ही प्राप्त करता है। अतः प्रत्येक घटना का प्रभाव साहित्यकार पर पड़ता है। कोई भी रचना तभी कालजयी मानी जाती है। जब साहित्यकार द्वारा अपने समय के यथार्थ का सूक्ष्मता एवं निष्पक्षता से अध्ययन कर उसे काव्य का रूप दिया गया हो। डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा के विचारानुसार – ''प्रत्येक रचनाकार के मन पर युगीन दबाव का पड़ना स्वाभाविक है। कोई भी रचनाकार इस दबाव से नहीं बच सकता। इस दबाव की प्रक्रिया से ही रचनकार अपने युग से ऊपर उठकर उन भाव सत्यों की खोज करता है, जिनका उनके समकालीन परिवेश में अभाव है।''[39]

साहित्यकार अपने समय एवं समाज से भिन्न नहीं हो सकता। वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में अपने परिवेश से प्रभाव गहण करता है। अर्थात् साहित्यकार का अपने समय पर आधारित होना अनिवार्य सत्य हैं। साहित्यकार को दूरदर्शी एवं द्रष्टा इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह अपने यथार्थ के धरातल पर रहकर ऐसे आदर्शो की स्थापना करता है जो भविष्य में भी अपनी सार्थकता सिद्ध करते हैं उदाहरणस्वरूप – कबीर, तुलसी एवं प्रेमचन्द इतने वर्षो बाद भी जीवन्त साहित्यकारों की श्रेणी में आते हैं। समय बोध केवल अपने समय की वास्तविकता को दिखाना नहीं बल्कि उसकी विसंगतियों एवं विद्रूपताओं को दूर कर सुनहरे भविष्य की स्थापना करना है। प्रत्येक साहित्यकार की पारिवारिक, सामाजिक, व्यक्तिगत एवं आर्थिक समस्याएँ होती है परन्तु साहित्यकार होने के नाते अपने समय के प्रति उसकी दृष्टि अत्यंत सुक्ष्म एवं गहन होती है। वह समाज से कुछ–न–कुछ अलग खोज निकालती है जिस पर सामान्य व्यक्ति की दृष्टि नहीं जाती। डॉ॰ संसार चन्द्र के शब्दों में – ''साहित्य किसी विशेष व्यक्ति की सम्पदा न होकर युग–युग की सामूहिक रूप से अर्जित भाव सम्पति है, एक पीढ़ी की मनीषा साहित्य के माध्यम से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचती है। साहित्य के पुनीत तट पर खड़े होकर ही हम आदिकाल से चली आ रही ज्ञान–धारा का सहज ही स्पर्श कर सकते हैं। साहित्य स्रष्टा न केवल उस धारा में अवगाहन ही करता है अपितु वह उस धारा को निखार भी देता है।''[40] इस प्रकार साहित्यकार अपने समय के उपयुक्त बोध के कारण ही सर्वोत्तम साहित्य का निर्माता होता है।

---

[38] डॉ॰ रामविलास शर्मा, आस्था और सौन्दर्य, (भूमिका) पृ॰ 11
[39] डॉ॰ हरिश्चन्द्र वर्मा, तुलसी साहित्य में शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान पृ॰ 27
[40] डॉ॰ संसार चन्द्र, संक्षिप्त बिहारी, पृ॰ 127

2.4 समय बोध के मानक तत्त्व :

समय बोध के अर्थ एवं परिभाषा पर विवेचन के पश्चात् समय बोध के मानक तत्त्वों पर दृष्टि डालना अनिवार्य हैं साहित्यकार अपने अतीत का परिष्कार करते हुए वर्तमान विचारधाराओं के आधार पर अग्रसर होता है। समय परिवर्तन के साथ ही समय के निर्धारित मूल्य भी बदलते रहते हैं। साहित्य पढ़ते समय उस समय विशेष की विशिष्टताओं का अध्ययन भी किया जाता है – डॉ॰ बैजनाथ प्रसाद का मन्तव्य है कि – ''युग चेत्ता कलाकार की लेखनी युग चितेरी होती है, वह सुवर्ण के जाज्वल्यमान पदों से आवृत सत्य के मुख को उघाड़ने में नहीं हिचकती, स्पष्टतया साहित्य वह आईना है जिसके समक्ष आते ही तत्कालीन समाज की वास्तविक तस्वीर दिखाई दे जाती है।''[41] समय के साथ रचना की गुणवत्ता तभी बनी रहती है। जब वह अपने आने वाले समय में भी अपनी गरिमा बनाए रखे। उदाहणस्वरूप प्रेमचन्द का साहित्य जब लिखा जा रहा था तब हमारे साहित्यकारों (आलोचकों) ने उसमें नयापन भले ही न देखा हो, परन्तु आज इतने वर्षो बाद भी उनके साहित्य की समकालीन समय के संदर्भ में भी सार्थकता है। यह समय के तालमेल के कारण ही हमें आज के समय में भी वह नवीन दिखाई देता है। इस प्रकार समय बोध की प्रक्रिया में नवीनता, परिवर्तनशीलता, समसामयिकता एवं आधुनिकता जैसे अनेक महत्वपवूर्ण तत्त्व अपनी अनिवार्य भूमिका निभाते हैं।

क. नवीनता : समय बोध के मानक तत्त्वों में नवीनता का स्थान महत्त्वपूर्ण है। साहित्य में प्राचीन परम्पराओं को संभालते हुए नवीन मूल्यों की खोज की जाती है। किन्तु नवीनता समय बोध के लिए अनिवार्य है परन्तु इसे समय बोध का पर्याय नहीं स्वीकारा जा सकता है। समय बोध की महत्वपूर्ण विशेषता नवीनता के लिए आग्रह है। नवीनता के कारण ही रचनकार नित नए साहित्य का सृजन करता है। इस प्रकार नवीनता समय बोध के लिए अनिवार्य है।

ख. परिवर्तनशीलता : सामाजिक परिवर्तन के साथ ही समय बोध भी परिवर्तित होता है। आस्था, जड़ एवं मूल्यों का नाम समय बोध नहीं है। समय परिवर्तनशील है। वह नित्य नए रूपों में परिवर्तित होता रहता है सामाजिक परिवर्तन के साथ ही मनुष्य का बोध ही परिवर्तित होता रहता है इस प्रकार समय बोध स्थिर न होकर प्रवाहमय गति से बढ़ता रहता है।

ग. समसामयिकता : समसामयिकता समय बोध का महत्वूपर्ण तत्त्व है परन्तु इसे समय बोध का पर्याय स्वीकार नहीं किया जा सकता। साहित्यकार अपने साहित्य में समसामयिकता, सामाजिक परिस्थितियों एवं व्यवस्थाओं पर प्रकाश डालता है। क्योंकि

---

[41] डॉ॰ बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग–चेतना, पृ॰ 3

रचनाकार अपने समय से प्रभावित होकर ही रचना की निर्मिति करता है। इस प्रकार समसामयिकता समय बोध का महत्वपूर्ण गुण है।

घ. **आधुनिकता :** आधुनिकता किसी समय विशेष का भाव है समाज में जितने भी परिवर्तन होते हैं, उनके प्रति तर्क शक्ति पैदा करने की चेतना आधुनिकता है। समय बोध प्रत्येक परिवर्तन को स्वीकार करता नहीं करता। वह केवल समाज हित के लिए हुए परिवर्तनों को ही स्वीकार्य मानता है। इस प्रकार आधुनिकता समय बोध में ही समाहित है। यह समय बोध का अंश है। इसे समय बोध का समानार्थी स्वीकार नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार ये सभी समय बोध के आवश्यक एवं निर्माणक तत्त्व है। इन सभी तत्त्वों को संयोजित एवं व्यवस्थित करने में साहित्यकार के विवेक एवं जागरूकता का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

2.5 समय बोध परिवर्तन के कारण :

समय परिवर्तन के साथ–साथ मानव के बोध में भी बदलाव आता है। बोध अपने समय के सत्य–असत्य, शुभाशुभ, तात्कालिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक प्रवृत्तियों को पहचानने की शक्ति साहित्यकार को प्रदान करता है। साहित्यकार अपने समय का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से चित्रण करता है। वह प्रत्यक्ष रूप से अपने समय की समस्याओं का आंकन करता है तथा परोक्ष रूप से अपने समय के अभावों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर उन न्यूनताओं का सशक्त चित्रण अपने साहित्य में करता है। समय परिवर्तन के कारण प्रत्येक समय खण्ड का बोध विभिन्नता लिए होता है। समय बोध परिवर्तन के कारणों की चर्चा करते हुए डॉ॰ भारद्वाज का कथन है कि – ''पुरानी मान्यताओं, परिस्थितियों में परिवर्तन और नवीन के प्रादुर्भाव के समय ही युगबोध में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित होता है समय के साथ–साथ कुछ परिस्थितियाँ बदल जाती है, मान्यताएँ चूक जाती है और रिक्त पूर्ति के लिए कुछ नवीन स्थापनाएँ होती हैं।''[42] समय बोध के अनेक घटक हैं समय परिवर्तन के साथ–साथ कुछ उपसिति होकर नया रूप धारण कर लेते हैं और कुछ खण्डित होकर समाप्त हो जाते हैं। डॉ॰ अखिलेश का मन्तव्य है – ''समय खण्डित या अखण्डित इकाई है.... दीपक जब जलता है तो उसकी लौ एक होती है लेकिन उसकी एक–एक बाती अलग–अलग जलती है। तो अलग–अलग जलना और एक सा दिखना लेखक की दृष्टि ऐसी होनी चाहिए कि उसे समग्र रूप में देखें और उसकी एक–एक इकाई डिकान्स्ट्रकट करके उसे बाती के रूप मे भी देखनी चाहिए।''[43] समय बोध अन्वेषण में सहायता करता है तथा खोज करना अन्वेषण से तैयार होने

---

[42] डॉ॰ राज भारद्वाज, हिन्दी खण्ड काव्यों में युग बोध, पृ॰ 24

[43] सम्पा॰ बद्री नारायण, साहित्य और समय (लेख) डॉ॰ अखिलेश पृ॰ 27

वाले मूल्य समाज के समय बोध का निर्माण करता है। तभी साहित्यकार समय बोध को पहचानने में सफल होता है।

वास्तविकता के धरातल पर जो यथार्थ सामाजिक दृश्य है समय उसी में बसता है लेखक इसके प्रति गहन दृष्टि के द्वारा अपना साहित्य रचता है जो पुनः नवीन प्रतीत होता रहता है। वस्तुतः समय बदलेगा तो साहित्य भी बदलेगा और निरन्तर बदलता भी जा रहा है। साहित्य रिले रेस की भांति है जिसमें पिछला अगले को थमाता है और आगे वाला फिर अपने आगे वाले को थमाता है और इस तरह चीजें नई होती चली जाती हैं। इस प्रकार हम परम्पराओं को साथ लेते हुए नवीनता को ग्रहण कर लेते हैं। समय बोध में परिवर्तन का मुख्य कारण समाज में प्रचलित नैतिक मानदण्ड एवं मनुष्य की वर्जितोन्मुखी चेतना है। जो चली आ रही व्यवस्था को तोड़ने का प्रयास करती हैं परिवर्तित समय बोध कहीं खण्ड में तो कहीं सम्पूर्ण में क्रान्ति लाता है। इस विषय में डॉ॰ अखिलेश का मन्तव्य इस प्रकार है ' ''नया साहित्य नए प्रयोगों के साथ होता है कहीं अपनी परम्परा के साहित्य से अलग हटकर के कुछ नया स्थापित करता है तो उसे नया साहित्य कहते हैं।... आज का समय टैक्नोलॉजी का समय है टैक्नोलॉजी को बिना समझे आप आज के समय को ही नहीं समझ सकते।''[44] इनके अनुसार जहाँ समय बोध परिवर्तन में धर्म, कला, आध्यात्मिकता सहायक हैं वहीं वैज्ञानिक विकास भी समय बोध परिवर्तन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है इस प्रकार टैक्नोलोजी की समय परिवर्तन में महती भूमिका रहती है।

2.5.1 स्वतन्त्रता पूर्व समय बोध :

समय एवं समाज का गहरा संबंध रहता है। समय अपने समाज की कालगत स्थितियों का प्रतिनिधित्व करता है। समाज सभ्यता, संस्कृति, कला, इतिहास, साहित्य आदि सभी आतंरिक और बाह्य परिस्थितियों का बोधक समय होता है। प्रत्येक समय खण्ड की देशगत एवं कालगत परिस्थितियाँ भिन्न होती हैं। उदाहरणार्थ मुगल काल की अपनी राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियाँ अलग थी। अंग्रेजों के आगमन के साथ ही ब्रिटिश काल का उदय हुआ जो भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है जिसके घटते ही मुगल काल की परिस्थितियों में भारी उलट फेर आया। अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर हो रहे अत्याचार को देखकर एक साहित्यकार की कलम मौन केसे रह सकती थी। उसने गुलामी की जंजीरों को तोड़ स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए काव्य की रचना की। यही कारण है कि स्वतन्त्रता पूर्व की रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना के दर्शन होते हैं। साहित्यकार ने अपने समय की विद्रूपताओं एवं विसंगतियों को साहित्य में उकेरा भारतीय जनता को जागृत करने के लिए उन्होंने ऐसे साहित्य का निर्माण

---

[44] सम्पा॰ ब्रदी नारायण, साहित्य और समय , लेख डॉ॰ अखिलेश पृ॰ 96

किया जो भारतीय जन में साहस, वीरता, राष्ट्र के प्रति प्रेम, बलिदान जैसे भाव कर सके। विजेन्द्रपाल का रस विषय में विचार द्रष्टव्य है – ''देश के वातावरण में बिजली सी दौड़ गई और नवयुवक एक अजीब सा उत्साह और स्फूर्ति का अनुभव कर रहे थे। हम यह आशा करते हैं कि इसका परिणाम भविष्य में कुछ होगा।''[45] इस प्रकार स्वतन्त्रता पूर्व साहित्य स्वतन्त्रता प्राप्ति के उद्देश्य से अधिक लिखा गया यही उस समय की माँग थी ताकि जन मानस में राष्ट्र के प्रति प्रेम एवं परतंत्रता के प्रति विद्रोह के स्वर उठा सके। इस प्रकार साहित्यकारों ने अपने परिवेश एवं परिस्थितियों के बोध के कारण ही अपने देश को जागृत किया। उस समय की विसंगतियों एवं विद्रूपताओं का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर उनके समधान खोजने का भरसक प्रयास किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ देश की परिस्थितियों में भी उच्च स्तर का बदलाव आया।

2.5.2 स्वातन्त्र्योत्तर समय बोध :

स्वतन्त्रता प्राप्ति भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्र के सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन में अनेक परिवर्तन हुए। क्योंकि वह शताब्दी की शारीरिक व मानसिक दासता के बंधनों से मुक्त हुए थे। इस विषय में रामदरशमिश्र का मन्तव्य इस प्रकार है – ''इतिहास के दीर्घतम बन्धन के अनन्तर मुक्ति की प्रक्रिया का अपेक्षाकृत अधिक विचित्र एवं अपेक्षाकृत अधिक तीव्र होना अनिवार्य था।''[46] स्वतन्त्रता पूर्व भारतीय जनता ने जो स्वप्न देखे थे स्वतन्त्रता के बाद उन्हें पूरा करने का समय आ गया था। देश की जनता अब यथार्थ को देखना चाहती थीं अतः स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी काव्य बुद्धिवाद की दिशा में गतिशील हुआ। जहाँ प्राचीन एवं मध्यकाल सहज विश्वास के काल थे, आधुनिक काल सहज शंका का काल है। शंका और दशाहीनता की आँखों से देखने पर लगता है कि यह युग 'अंधा युग' है और हम अंधेरे में जी रहे हैं।''[47] स्वातन्त्र्योत्तर काव्य जीवन के यथार्थ, तथ्य, तर्क एवं बुद्धि का काव्य है।

आजादी के पश्चात् भारतीय जनतंत्र के इतिहास में 1950, 1960 एवं 1990 तीन महत्त्वपूर्ण समय–खण्ड हैं। 1950 का समय–खण्ड इसलिए महत्वपूर्ण था क्योंकि इसमें हमारा राष्ट्र स्वतन्त्र हुआ था। स्वतन्त्रता की लड़ाई के दौरान जन मानस ने जो सपने देखे थे उन्हें पूरा करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। स्वतन्त्र भारत में जनतांत्रिक चुनाव का यह पहला अवसर था। सभी को यह सपने दिखाए गए कि सभी को उचित खाना मिलेगा, बिजली मिलेगी, शिक्षा का प्रसार होगा, जाति–पाति का भेदभाव समाप्त होगा। इस प्रकार वह उद्भव एवं विकास का काल था। डॉ॰ बद्री नारायण के शब्दों में – ''भारतीय कल्याणकारी राज्य से अपेक्षाएँ बढ़ रही

---

[45] डॉ॰ विजेन्द्रपाल सिंह, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन,पृ॰ 102
[46] डॉ॰ रामप्रसाद मिश्र, आलोचना की नई दिशाएँ, पृ॰ 145
[47] डॉ॰ रामप्रसाद मिश्र, नया साहित्य नये आयाम, पृ॰ 50

थी कि इस वक्त भी भारतीय समाज का अभिजात्य का समय बोध सचमुच 1950 में था, जो भारतीय राज्य की शक्ति एवं सुविधाओं को ज्यादा से ज्यादा हथिया लेना चाहता था वहीं दलित, पिछड़े एवं उपेक्षित तबके अभी भी आजादी की लड़ाई के दिनों में अपने सरवाइवल के लिए अंग्रेजी साम्राज्य के दंश से उत्पन्न, क्रिमिनल ट्राइव एक्ट इत्यादि से मुक्ति की स्थिति बनने के सपने में पड़े थे।''[48] इस प्रकार यह समय–खण्ड विकास की संभावनाओं का था। सपनों को पूरा करने का था।

1960 के समय खण्ड में जन मानस का स्वप्न भंग हो रहा था। इस समय विकास की योजनाओं में दलित एवं अपेक्षित वर्ग पर ध्यान नहीं दिया गया। ''दलित शिक्षक लेखक संवर्ग 1960 के बाद भारतीय राष्ट्रवाद के दलित नायकों को ढूँढना शुरू करता है। भारतीय राष्ट्रवाद के वृतान्त में अपनी छवि खोजना शुरू करता है।''[49] इस प्रकार इस समय खण्ड में शोषक वर्ग का उत्थान हुआ जिसके विद्रोह में शोषित वर्ग ने आवाज उठाई। दलित एवं निम्न वर्ग अब दबा नहीं रहना चाहता था वह उठकर सम्मान सहित जीना चाहता था। इसलिए साहित्य में उसके इस विद्रोह से स्वर गुँजने लगे थे। अब प्रत्येक नवयुवक जो आजादी की लड़ाई चुका था वह अपनी भूमिका का हिसाब माँग रहा था। भारतीय जनतान्त्रिक सत्ता से मोहभंग की प्रक्रिया विकसित हो रही थी। कल्याणकारी योजनाओं का लाभ धरातल तक पूर्ण रूप से नहीं पहुँच पा रहा था। फणीश्वर नाथ रेणु का उपन्यास मैला आँचल इसका स्पष्ट उदाहरण है। दलित एवं जातिवाद को लेकर भी साहित्य लिखा गया। डॉ॰ पूरन जोशी के शब्दानुसार – ''भारत में जातीयता और सम्प्रदायिकता के उभार भी नए सामाजिक परिदृश्य का अभिन्न अंग है।''[50] अतः सामाजिक और आर्थिक संक्रमण की प्रक्रिया ही सामाजिक संकटों एवं असुरक्षाओं को जन्म देती है।

1990 के कालखण्ड में मानवीय विकास के इतिहास में एक महत्वपूर्ण 'सोवियत रूस का पतन' हुई। जिसने पूरी दुनिया को भयग्रस्त कर दिया। समय परिवर्तन हुआ भूमण्डलीकरण के कारण पूरा विश्व एक हो गया। पूरी दुनिया एक बाजार में तब्दील हो रही है। अब किसी भी घटना का असर किसी क्षेत्र या देश पर न होकर पूरे विश्व पर पड़ता है। डॉ॰ बद्रीनारायण के शब्दों में ''दुनिया एक ध्रुवीय होने जा रही है और पूरी दूनिया एक बाजार में तब्दील होने जा रही है। प्रतिरोध एवं राजनीति फ्रैक्चर्ड होती है। सत्ता की केन्द्रीयता टूटती है। यह सब सामाजिक, राजनैतिक, प्रक्रियाएँ हमारे आलोचनात्मक चेतना बोध एवं रचनात्मक स्फेयर में महत्वपूर्ण परिवर्तन ला रही थी।''[51]

---

[48] सम्पा॰ ब्रदी नारायण, साहित्य और समय, भूमिका, पृ॰ 17
[49] वही, पृ॰ 16
[50] डॉ॰ पूरन चन्द जोशी, स्वप्न और यथार्थ, पृ॰ 143
[51] डॉ॰ ब्रदी नारायण, साहित्य और समय, भूमिका, पृ॰ 21

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि समय बोध स्वतन्त्रता पूर्व अलग परिदृश्य के रूप में दिखाई देता है वहीं स्वातन्त्र्योतर समय में बोध तीव्रता से परिवर्तित हुआ। आजादी से पहले जहाँ जन मानस को राष्ट्र के प्रति जागृत करने वाला साहित्य लिखा गया वहीं स्वातन्त्रता के पश्चात् जन मानस के स्वप्न के यथार्थ के धरातल पर दम तोड़ते नजर आते हैं। धीरे–धीरे शोषित एवं दलित वर्ग विद्रोही के रूप उदित हुआ वहीं आज पूरा विश्व एक बाजार के रूप में तब्दील हो रहा है। इस प्रकार समय के साथ–साथ बोध परिवर्तन स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। दुनिया का एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचना समय बोध का ही परिणाम है।

2.5.2 इतिहास के आइने में समय बोध परिवर्तन का संक्षिप्त वर्णन :

सभ्यता के विकसित होने के साथ ही समय बोध में भी परिवर्तन आया है। मानवीय सभ्यता का विकास समय बोध में आने वाले परिवर्तनों को चित्रित करता है। समय बोध का अध्ययन हम यहाँ समय–खण्डों में विभक्त करके करेगें। आदिकाल में मनुष्य के बोध में परिवर्तन तेज गति से नहीं हुआ क्योंकि उस समय सभ्यता का आर्थिक विकास नहीं हुआ था। उस समय के मनुष्य के हृदय में एक अज्ञात भय का निवास था जिसे बाद में ईश्वरीय शक्ति के रूप में स्वीकृति दे दी गई। यह ईश्वरीय शक्ति मानव के कार्यो को नियंत्रित करने लगी। विश्लेषण की शक्ति के अभाव के कारण मनुष्य ने इन अदृश्य शक्ति की सत्ता को स्वीकार कर लिया। इसके पश्चात् सामाजिक व्यवस्था का समय आया। इस प्रकार समय मानवीय बोध के कारण ही पाषाण काल से कृषि की तरफ बढ़ा। कृषि सभ्यता के साथ ही नए अर्थशास्त्र का उदय हुआ फिर भी लोगों की ईश्वरीय शक्ति के प्रति श्रद्धा कम नहीं हुई। अब भी प्राकृतिक आपदाओं को ईश्वरीय प्रकोप समझा जाता था। अब शोषक वर्ग इस अंधविश्वास का लाभ उठाने लगे और जनता को लूटने लगे। इसके फलस्वरूप समाज सम्प्रदाओं में बंट गया। अनेक आंदोलन हुए इन आदोलनों ने मानव जीवन को गहराई तक प्रभावित किया और समय बोध में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए जिसे आधुनिक काल का नाम दिया गया।

आधुनिक युग में संचार के साधनों का प्रसार हुआ, यातायात के साधनों के प्रसार के साथ ही मानव बोध में एक नई दृष्टि जागृत हुई। प्रेस एवं छापेखाने के आविष्कार के कारण मानवीय सोच में एक नया परिवर्तन दिखाई देने लगा। औद्योगिक क्रान्ति के कारण मानव चेतना भरपूर विकसित हुई। परन्तु द्वितीय विश्व युद्ध ने मानव की आस्थाओं को झंझोर दिया। युद्धों के कारण नैतिकता, मान–मर्यादा, आस्था मानव मूल्य एवं संस्कृति विनष्ट होने लगे। इन युद्धों के प्रभावों को साहित्यकारों ने वाणी प्रदान की फलस्वरूप अंधा युग, अमिता, महाप्रस्थान जैसे नाट्यकाव्य लिखे गए। इन नाट्यकाव्यों में लेखकों ने पुराने का विध्वसंक एवं नवीन को निर्माण का सेतू माना हैं। डॉ॰ राम प्रसाद मिश्र के शब्दों में – ''युद्ध इतिहास का सर्वोपरि नियामक निर्माता रहा है। इतिहास के पूर्व पाषाण काल, उत्तर पाषाण काल, ताम्र काल, लौह काल

इत्यादि इसके साक्षी है। शत–शत सामान्य आन्दोलन जो कार्य दशाब्दियों तक नहीं कर पातें, एक प्रभावी युद्ध वह कार्य सप्ताह में कर डालता है।''[52] कम्प्यूटर के युग में मानव का पदार्पण आश्चर्यजनक परिवर्तन लाया। अब समाज जितनी तीव्र गति से परिवर्तित हुआ समय बोध भी उतनी ही द्रुत गति से परिवर्तित हुआ। अतः समाज की परिस्थितियों और व्यवस्था के परिवर्तन के साथ ही समय बोध में परिवर्तन होता रहेगा।

2.6 समय बोध के विविध आयामः

आधुनिक समीक्षक समय बोध को समय चेतना का पर्याय स्वीकारते है। चेतना शब्द की व्यापकता को दर्शाते हुए डॉ॰ बैजनाथ शुक्ल का मत है कि – ''इसे बोध या 'चैत्य' के समानार्थक शब्द के रूप में ग्रहण किया जा सकता है।''[53] प्रो॰ राकेश कुमार ने चेतना को इस प्रकार परिभाषित किया है '' चेतना यथार्थ बोध की संवाहक है। जिसमें समय यथार्थ साहित्यकार के रचनात्मक फलक पर कहीं सपाट एवं कही संश्लिष्ट रूपों से परतों में अन्तर्निहित रहता है। यही रचनाकार का यथार्थ बोध, समय सापेक्ष होकर सामाजिक बदलाव के प्रति अपना सार्थक दायित्व सम्पन्न करता है।''[54] मानव के समग्र व्यवहार को गति प्रदान करने वाला तत्त्व चेतना है। डॉ॰ मोहिनी श्रीवास्तव का मन्तव्य है – ''चेतना प्राणी मात्र में रहने वाला वह तत्त्व है जो उसे निर्जीव जड़ पदार्थो से भिन्न बनाता है उन्हें चैत्य सम्पन्न बनाकर जीवधारी सिद्ध करता है। चेतना सम्पन्न मनुष्य ही अपने समय को सूक्ष्मता से समझ सकता है।

समय–खण्ड में परिवर्तन के साथ ही इस समय के निर्धारित मूल्यों में भी परिवर्तन आता है सर्वप्रथम व्यक्ति का मन बदलते हुए मूल्यों को स्वीकार करने में संकोच करता है परन्तु जब वे मूल्य सामूहिक रूप से स्वीकार कर लिए जाते है तो वे उस समय के बोध का रूप धारण कर लेते हैं। अतः प्राचीन एवं नवीन चेतना के मध्यम संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और इस संघर्ष के कारण प्राचीन मूल्य एवं नवीन मूल्य मिलकर एक नए बोध का निर्माण करते हैं जिसके द्वारा जीवनोपयोगी मूल्यों का संरक्षण किया जाता है और अनावश्यक मूल्यों को छोड़ दिया जाता है। इस परिवर्तन से हमारी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ गहनता से प्रभावित होती है। अतः अपने समय की विशेषताओं को प्रतिपाद्य बनाकर चलने वाली रचनाएँ ही समय–बोध युक्त रचना कहलाती है। अपनी परिवेशगत विशेषताओं का बोध ही समय बोध हैं। ये परिवेशगत विशेषताएँ ही समय बोध के आयाम है।

---

[52] डॉ॰ रामप्रसाद मिश्र, नया साहित्य : नये आयाम, पृ॰47
[53] डॉ॰ बैजनाथ शुक्ल, भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग–चेतना, पृ॰ 5
[54] डॉ॰ राकेश कुमार, धुमिल की काव्य चेतनाः विविध आयाम, पृ॰ 1

2.6.1 सामाजिक आयाम :

मनुष्य समाज की छोटी इकाई है। अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिए मनुष्य ने सामूहिक रूप से समाज का संगठन किया है। सभी अपनी–अपनी आवश्यकताओं, भावनाओं तथा समान उद्देश्यों के कारण संगठन में रहने लगे। नालंदा विशाल शब्द सागर के अनुसार – ''सामाजिक शब्द 'समाज' शब्द में 'इक' प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है – समाज का, समाज के लिए, समाज द्वारा, समाज से संबध रखने वाला या समाज में क्या व्यवस्था है या रही है सामाजिक कहलाती है।''[55] तथा बोध का अर्थ जानना एवं समझना से लिया जाता है। अतः समाज में रहकर मनुष्य अपने समाज के विषय में जो ज्ञान, जानकारी प्राप्त करता है। वह सामाजिक बोध कहलाती है। समाज में मनुष्यों का आपसी व्यवहार एवं उनका समाज पर पड़ने वाले प्रभाव का सुनियोजित ढंग से प्राप्त ज्ञान को समय–बोध की संज्ञा दी जाती है। अपने समाज की स्थिति का ज्ञान बोध द्वारा ही होता है। डॉ॰ कमला प्रसाद समाज को मनुष्य द्वारा निर्मित मानते हुए इसे इस प्रकार परिभाषित करते हैं। – ''समाज के विकास एवं समाज के ज्ञान के दो ध्रुव हमारे इतिहास में लगातार दिखाई दे रहे हैं। एक ध्रुव यह है कि समाज के लोग समाज से ही विकसित और समाज को ही मनुष्य के विकास का रूप मानते है। वहीं सामुदायिक व मनुष्य निर्मित हैं। मनुष्य अपना समाज स्वयं बनाता है। मनुष्य ने एक राष्ट्र बनाया, राष्ट्र से समाज बना फिर क्षेत्र बने तो क्षेत्रीय समाज बन गया, फिर जातिय बनी तो जातियाँ समाज बन गया। लेकिन कुल मिलाकर यह समाज मनुष्य द्वारा ही निर्मित है।''[56] अतः समाज अनेक घटकों से मिलकर बना है।

समाज द्वारा अपने दायित्वों की पूर्ति न होने के कारण शोषण, अंधविश्वास, असमानता, अज्ञानता आदि विकृतियाँ आ जाती है। इन विकृतियों को दूर करने के लिए होने वाली क्रिया–प्रतिक्रियाएं सामाजिक बोध का ही विचारात्मक रूप हैं जो समाज के क्रिया कलापों को प्रतिबिम्बित करता है। मनुष्य अपने परिवेश में रहकर ही अपनी परिवेशगत विशेषताओं को ग्रहण करता है। डॉ॰ नंद किशोर का मन्तव्य इस विषय में इस प्रकार है – '''मनुष्य जो अपना आत्मसृजन करता है। वो एक विशेष परिवेश में करता है। एक विशेष परिस्थिति समूह एवं ऐतिहासिक परिस्थिति, सामाजिक परिस्थिति में करता है। उस परिवेश की वजह से वह कुछ खास विशेषताएँ या लक्षण उसमें विकसित होते हैं।''[57] इसी परिवेश एवं परिस्थिति में रहते हुए व्यक्ति का बोध उसी के अनुरूप विकसित होता है। समाज द्वारा मनुष्यों को व्यवस्थित रखने के लिए कुछ नियम बना दिए जाते हैं। इन नियमों को तोड़ने पर समाज में साम्प्रदायिकता जातिवाद, अपराधीकरण सामाजिक असमानता बढ़ रही है। समाज को दोष रहित करने के लिए

---

[55] स॰, नवल जी, नालंदा विशाल शब्द सागर, पृ॰ 1473
[56] डॉ॰ ब्रदी नारायण, साहित्य और समय (लेख) कमला प्रसाद, पृ॰ 118
[57] डॉ॰ बद्री नारायण, साहित्य एवं समय, (लेख) नंद किशोर आचार्य, पृ॰ 125

अपने समय की विद्रूपताओं एवं कठिनाईयों को आत्मसात कर उनका समाधान खोजना ही सामाजिक समय–बोध है।

समाज के प्रत्येक छोटे बड़े परिवर्तन का प्रभाव साहित्यकार को सीधे रूप से प्रभावित करता है, साहित्य को देखने व समझने की दृष्टि सभी की भिन्न हो सकती है। इस विषय पर डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचार द्रष्टव्य है। ''साहित्य को शुद्ध साहित्य की दृष्टि से देखने और सामाजिक चेतना से निर्मित साहित्य की दृष्टि से देखने में अन्तर आ जाता है। साहित्य को मनुष्य और उसके समाज के संदर्भ में भी देखा जाता है। उनके अनुसार सौन्दर्य सामाजिक सौन्दर्य से ही आता है। और जब तक समाज में आदमी और आदमी वर्ग के बीच भयानक खाई बनी रहेगी समाज सुन्दर नहीं होगा।''[58] अतः हमारे समाज में नित्य परिवर्तन होते रहते हैं। जिनके अनुसार ही सामाजिक यथार्थ को विश्लेषित किया जाता है।

इस प्रकार साहित्य के निर्माण में समाज की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए साहित्य को समाज का प्रतिबिम्ब कहा जाता है। जैसा समाज होगा वैसा ही साहित्य होगा। सामाजिक बोध समाज की प्रत्येक ईकाई का गहनतम ज्ञान है। इस प्रकार बोध के कारण समाज की विकृतियों एवं विशेषताओं को संश्लेषित एवं विश्लेषित कर उनका अध्ययन किया जाता है साहित्य सदैव अपने सामाजिक परिवेश से संबंधित रहता है। अतः सामाजिक बोध समय बोध का एक विशष्टि आयाम है।

2.6.2 राजनीतिक आयाम :

राजनीति शब्द अंग्रेजी के Politics शब्द का पर्याय हें जिसका अर्थ राजधर्म व राज शास्त्र के रूप में लिया जाता है। राजनीति 'राज' और 'नीति' दो शब्दों के योग से निष्पन्न होता है। राज का अर्थ राज्य से लिया जाता है और नीति का अर्थ संदर्भ नियम से लिया जाता है। इस प्रकार राजनीति का अर्थ राज्य के संदर्भ नियमों से लिया जाता है। बृहत हिन्दी शब्द कोश के अनुसार राजनीति का अर्थ है – ''राज्य की रक्षा और शासन को दृढ़ करने का उपाय बताने वाली नीति।''[59] हिन्दी शब्द सागर में राजनीति को इस प्रकार व्याख्यायित किया गया है – ''राजनीति वह नीति है जिसका सहारा लेकर शासक अपने राज्य की रक्षा और शासन की पद्धति को दृढ़ करता है।''[60] अर्थात राजनीति मनुष्य तथा राज्य के आपसी संबंधों एवं मनुष्य के आपसी संबधों को प्रकट करती है। वकेल्ले के अनुसार – ''राजनीतिक विचारधारा सामाजिक

---

[58] डॉ॰ उदय भानु सिंह, साहित्य अध्ययन की दृष्टियाँ, पृ॰ 25
[59] सम्पा॰ कालिका प्रसाद व अन्य, बृहत हिन्दी कोश, पृ॰ 952
[60] सम्पा॰ श्याम सुन्दर दास, हिन्दी शब्द सागर, भाग–4, पृ॰ 451

बोध का एक ऐसा रूप है, जिसके द्वारा वर्गो के संबंध, राज्य से युक्त समाज के विकास के एक या अन्य समाजों और राज्यों से उनके संबंध प्रतिबिम्बित होते है।''[61]

राजनीतिक बोध को सामाजिक बोध से भिन्न नहीं किया जा सकता क्योंकि राजनीति समाज में ही फलती–फुलती है। समाज की पुरानी परम्पराएँ तोड़ने एवं नवीन व्यवस्थाओं के निर्माण में। राजनीतिक आंदोलनों की महती भूमिका होती है। किसी भी समाज को समझने के लिए उसकी राजनीतिक स्थिति का बोध अनिवार्य है। राजनीतिक बोध से कटा हुआ किसी भी समाज का साहित्य मृत शरीर के समान है। प्राचीन समय से ही समाज में राजनीति की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। प्राचीन समय में राजनीति का केन्द्र बिन्दु राजा ही होता था। वह राज्य का प्रमुख होने के कारण प्रजा निर्विरोध उसकी इच्छाओं को स्वीकार कर लेती थी।

जनतन्त्र की प्रस्थापना होने पर जनता का राजनीति विषयक बोध परिवर्तित हो गया। यह सब बदलते सामाजिक परिवेश के कारण हुआ। आधुनिक समय में राजनीतिक क्षेत्र में आए परिवर्तन का प्रभाव राष्ट्र पर ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी पड़ता है। किसी भी समाज एवं राष्ट्र की स्थिति का अनुमान उसकी राजनीतिक स्थितियों के आधार पर लगाया जा सकता है। आधुनिक समय में राजनीति का प्रभाव अत्यन्त व्यापक है। सामाजिक जीवन में यह प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् राजनीति के सैद्धान्तिक पक्ष को कार्यान्वित करने में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है इस विषय में डॉ॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी का मन्तव्य इस प्रकार है – ''साम्प्रदायिक राजनीति के अतिरिक्त सैद्धान्तिक राजनीति कदाचित राष्ट्र का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न बन गई थी। साम्प्रदायिक समस्याएँ तत्कालिक थी। परन्तु सिद्धान्तों का यह संघर्ष दर्शन तथा मनोविज्ञान के स्तर पर चल रहा था। इस संघर्ष में एक अेर साम्यवाद था दूसरी और गांधीवाद, सर्वोदय तथा समाजवाद के आदर्श थे।''[62]

स्वतन्त्रता के पश्चात् सामाजिक उत्थान के साथ ही राजनीति में भी अमूल्य परिवर्तन हुए इस प्रकार राजनीतिक बोध समाज निर्माण में महती भूमिका निभाने के साथ–साथ उसे प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित करता है। डॉ॰ कमला प्रसाद पाण्डेय के अनुसार – ''आज जिस प्रजातान्त्रिक जीवन पद्वति के आधार पर हमारा देश अग्रसर है यदि वह सफल हुआ तो विश्व की विघटनशील राजनीति को इस देश का यह सबसे बड़ा प्रदेय होगा। राजनीति प्रत्येक राष्ट्र के लिए एक असाधारण आलोक का केन्द्र है।''[63] अतः राजनीति किसी भी राष्ट्र की समृद्धि एवं सम्पन्नता का आधार होती है। राजनीतिक क्षेत्र को सम्पन्न बनाकर ही राष्ट्र विश्व में अपना स्थान निर्धारण करता है। राजनीति को व्यक्तिगत केन्द्र से होकर जनतान्त्रिक केन्द्र तक

---

[61] वकेल्ले व कोपरलजेन, ऐतिहासिक भौतिकवाद, समाज के मार्क्सवादी सिद्धान्त की रूप रेखा, पृ॰ 273

[62] डॉ॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी नवलेखन, पृ॰ 38

[63] डॉ॰ कमला प्रसाद पाण्डेय, छायावादोतर काव्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ॰ 35

पहुँचाने में मानवीय बोध का ही योगदान हैं। इस प्रकार राजनीतिक चेतना के विकसित होने पर सकारात्मक परिवर्तन हुए जिससे राष्ट्र का विकास तीव्र गति से हुआ।

निष्कर्षतः राजनीति का साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अपने समय की राजनीतिक परिस्थितियों को समझकर ही अपने राष्ट्र की वास्तविक स्थिति का पता लगा सकते है। प्राचीन काल से ही राजनीति सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करती आ रही है। यद्यपि यहाँ तक आते–आते उसका स्वरूप बदल गया है। सजग रचनाकार समय की मांग के अनुरूप समसामयिक राजनीति के प्रभाव को अपने बोध के अनुरूप ग्रहण कर साहित्य में अभिव्यक्ति प्रदान करता है। अतः राजनीति भी समय बोध को प्रभावित करती है।

2.6.3. सांस्कृतिक एवं धार्मिक आयाम :

संस्कृति शब्द 'कृ' धातु में 'सम्' उपसर्ग एवं क्तिन प्रत्यय जोड़ने से व्युत्पन्न होता है। जिसका अर्थ है – परिष्कर तैयारी पूर्णता एवं मनोविकास।''[64] बृहत हिन्दी कोश के अनुसार संस्कृति ''सभ्यता का वह रूप है जो आध्यात्मिक एवं मानसिक वैशिष्टय का द्योतक होता है।''[65] डॉ॰ राम खेलावन पाण्डेय के अनुसार संस्कृति का अर्थ है ''अलंकार सम्यक कृति अथवा चेष्टा है।''[66] डॉ॰ मुंशीराम शर्मा संस्कृति को संस्कार पर आधारित मानते हैं जिसका अर्थ संशोधन एवं परिमार्जन है। इनके अनुसार – संस्कृति एवं संस्कार दोंनों शब्द एक दूसरे के सन्निकट है। अर्थ की दृष्टि से एक साध्य है, दूसरा साधन, एक जीवन को पूर्णता की ओर इंगित करता है। दूसरे विधि–विधानों की ओर संस्कारों का उद्‌देश्य है संस्कृति जीवन का निर्माण''[67] संस्कृति शब्द अंग्रेजी के कल्चर शब्द का पर्याय है। जिसका अर्थ ''शिक्षण और प्रशिक्षण द्वारा मन और आचार का परिष्करण और शुद्धिकरण, मन और आचार की परिमार्जित अवस्था बैद्धिक विकास अथवा सभ्यता का विशिष्ट रूप या प्रकार।''[68] इस प्रकार संस्कारेां को शुद्ध करने का साधन एवं हमारे जीवन का तरीका ही संस्कृति है।

विद्वानों ने अपने दृष्टिकोण एवं अनुभवों के आधार पर संस्कृति को अलग–अलग ढंग से परिभाषित किया है। डॉ॰ बलदेव प्रसाद मिश्र के अनुसार – माँजीसाँवरी जीवन वृति तथा जीवन चर्या का नाम ही संस्कृति है।''[69] डॉ॰ सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शब्दानुसार संस्कृति ''विवेक बुद्धि को जीवन को भली प्रकार जान लेने का नाम है।[70] जबकि डॉ॰ नेमिचन्द्र जैन की दृष्टि में –

---

[64] सम्पा॰ वामन शिवम् आप्टे, संस्कृत हिन्दी शब्द कोश, पृ॰ 1348
[65] सम्पा॰ कालिका प्रसाद व अन्य, बृहत हिन्दी शब्द कोश, पृ॰ 1178
[66] डॉ॰ रामखेलावन पाण्डेय, भारतीय संस्कृति एवं सांस्कृतिक चेतना, पृ॰ 38
[67] डॉ॰ मुंशी शर्मा, वैदिक संस्कृति और सभ्यता, पृ॰ 49
[68] Edit. The Readers Digest, Great Encylopaedic Dictionary, Vol I, P - 221
[69] डॉ॰ बलदेव प्रसाद मिश्र, भारतीय संस्कृति, पृ ॰ 5
[70] डॉ॰ सर्वपल्ली राधाकृष्णन, अनुवादक (विशम्भरनाथ त्रिपाठी), स्वतन्त्रता और संस्कृति, पृ ॰ 43

''वह (संस्कृति) मनुष्य के अवकाश के क्षणों की उपज है, जीवन यापन के संघर्ष में विजय होकर तथा उसकी तीव्रता में कमी होने से कुछ चैन मिलने पर ही मानव उन भौतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की सृष्टि करता है। जिनकी समग्रता का नाम संस्कृति है।''[71] डॉ॰ गुलाबराय के विचारानुसार – ''संस्कृति अर्जित विशेषताओं को एवं व्यवहार के प्रतिमानों का योग है जो व्यक्ति एवं संस्था द्वारा आने वाली पीढ़ी को हस्तान्तरित कर दिया जाता है।''[72]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कह सकते हैं कि संस्कृति मानव निर्मित परम्परागत वस्तु है जिसमें मानव की विशिष्ट जीवन पद्वति का समन्व एवं जीवन के मूल्यों का निर्धारण निहित है। यह मानव की संस्कार क्षमता है। स्थायी भाव एवं प्रतीकात्मक परिवेश संस्कृति की आधार शिला है।

परिवर्तन ही जीवन है। विश्व के हर क्षेत्र में किसी न किसी रूप में परिवर्तन होता रहता है। इसी प्रकार संस्कृति भी गतिशील वस्तु है। समय–समय पर होने वाले सामाजिक परिवर्तनों से संस्कृति भी परिवर्तित होती रहती है। जिस प्रकार साहित्य एवं समाज का संबंध है। उसी प्रकार समाज एवं संस्कृति का। संस्कृति के विकास में साहित्य का भी योगदान होता है। संस्कृति एवं साहित्य के इसी संबंध को प्रकट करते हुए डॉ॰ गजानन सुर्वे का मन्तव्य है – ''संस्कृति और साहित्य का अन्योन्याश्रय संबंध है। संस्कृति साहित्य को जन्म देती है तो साहित्य संस्कृति के विकास में योगदान देता है। संस्कृति की अभिव्यक्ति साहित्य में होती है तो साहित्य के द्वारा संस्कृति का भी पोषण होता है। साहित्य जहाँ जीवन का प्रतिनिधित्व करता हे, वहाँ उनका संचालन भी। जहाँ वह संस्कृति का चित्र खिंचता है। वहाँ उसे प्रेरणा भी देता है। संस्कृति के सभी सत् तत्त्व साहित्य में संरक्षण पाते हैं, जिनका अध्ययन एवं अनुशीलन अध्येता के अन्दर विचारों को उतेजित करता है और परिणामतः चिन्तन का उर्वर बना रहता है।''[73] डॉ॰ रामसजन पाण्डेय के मतानुसार – ''संस्कृति मानव जीवन के गतानुंगतिक संस्कारों का वह सफल रूप है, जो उसके सामाजिक आचार विचार, पूर्व–त्यौहार, रहनी–करनी, उन्नति एवं समृद्धि से जुड़ा है।''[74] मनुष्य अपने जन्म से मृत्यु तक प्रतिक्षण अपनी संस्कृति से प्रभावित होता है। जिस समाज में हम रहते है उस समाज का रहन–सहन, रीति रिवाज, आचार–व्यवहार हमारी संस्कृति है।

धर्म एवं संस्कृति एक दूसरे को प्रभावित करते हैं धार्मिक दृष्टिकोण में परिवर्तन होने के साथ ही सांस्कृतिक बोध भी परिवर्तित हो जाता है। धार्मिक शब्द धर्म से बना है। जो 'ध' धातु में 'अन्' प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है धारण करना तथा धार्मिक का अर्थ

---

[71] डॉ॰ नेमिचन्द्र जैन, रंगदर्शन, पृ॰ 9 (भूमिका)
[72] डॉ॰ गुलाब राय, भारतीय संस्कृति (भूमिका) पृ ॰ 4
[73] डॉ॰ गजानन सुर्वे, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटकों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ॰ 24
[74] डॉ॰ रामसजन पाण्डेय, भक्तिकालीन हिन्दी निर्गुण काव्य का सांस्कृतिक अनुशीलन, पृ ॰ 287

है – ''धर्म–संबंधी, धर्म करने वाला, क्षमा, दया आदि से युक्त।''[75] डॉ॰ क्षिति मोहन के मतानुसार – ''धर्म का जीवन में विशेष महत्व है। धर्म जीवन का प्रयोजन है तो जीवन धर्म का प्रयोजन है। दोनों एक–दूसरे के साधक हैं धर्म सत्य की निरन्तर खोज है और सत्य सदा अपरिभाषित है वह जिनता भी अपरिचित होगा उतना ही अधिक असीम बनता है। धर्म जितना समिष्ट रूप ही उतना ही व्यष्टि रूप है समिष्ट रूप धर्म व्यष्टि धर्म का ही प्रतिफलन है। यह प्रतिफलन व्यष्टि धर्म की आहुति सम्पन्न होता है।''[76] धर्म का वस्ताविक अर्थ है राष्ट्र के प्रति सच्ची निष्ठा, धार्मिक, दृष्टिकोण यह संस्कृति को गहन रूप से प्रभावित करता है।

धर्म एवं संस्कृति मिलकर एक सभ्य समाज का निर्माण करते हैं। समय परिवर्तन के साथ ही हमारी संस्कृति भी निरन्तर प्रभावित होती रहती है। डॉ॰ कमला प्रसाद पाण्डेय के अनुसार – ''सामाजिक अवस्था का बोध संस्कृति ही करती है। समग्र संस्कृति का बोध प्रबुद्ध व्यक्ति और समाज दोनों को हो सकता है। और इन दोनों में से किसी के मानस में समाज का संस्कार करने की प्रेरणा जन्म ले सकती है। समाज की प्रतिक्रिया में ही संस्कृति उभरती है और तत्कालीन निषेधी मूल्यों को उकेलकर उसे स्वस्थ रूप प्रदान करती है। साहित्य का संबंध संस्कृति से है। अतः उसमें ऐसी संस्कृति की झलक मिल सकती है।''[77] साहित्यकार समाज में रहता है वह प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सांस्कृतिक बोध से प्रभावित रहता है। मानव समाज की न्यूनतम इकाई है और समाज संस्कृति का आधार है। डॉ॰ सावित्री चन्द्र शोभा के शब्दों में – ''यद्यपि संस्कृति, व्यक्ति द्वारा अर्जित की जाती है किन्तु व्यक्ति समाज का अंग बनकर समाज द्वारा प्रदत्त तथा उससे प्रचलित भौतिक एवं भावनात्मक उपलब्धियों को ग्रहण करता है। संस्कृति के मूलतः दो रूप स्वीकार किए जा सकते हैं। प्रथम भौतिक उन्नति के रूप में जिसे सभ्यता की संज्ञा दी जाती है। द्वितीय वैचारिक एवं भावनात्मक रूप है जिसमें किसी जाति के विश्वास एवं मान्यताएँ शामिल है।''[78] समाज के बिना संस्कृति नहीं पनप सकती और प्रत्येक समाज की अपनी भिन्न संस्कृति होती हैं जो उसका दूसरे समाज से अलगाव प्रदर्शित करती है।

निष्कर्षतः संस्कृति समाज में जीने का तरीका एवं ढंग है। जो धीरे–धीरे जन जीवन के संस्कारों का रूप ले लेता है। साहित्यकार अपने संस्कृतिक बोध के द्वारा ही अपने समाज की निरर्थक संस्कृति को पीछे छोड़कर ग्राह्य संस्कृति को अपनाता हुआ चलता है इस प्रकार समय के साथ–साथ संस्कृति में भी परिवर्तन होता रहता है।

---

[75] सम्पादक, कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दीलाल, बृहत हिन्दी कोश, पृ ॰ 556
[76] आचार्य क्षिति मोहन, भारतीय संस्कृति, पृ॰ 36
[77] डॉ॰ कमला प्रसाद पाण्डेय, छायावादोतर हिन्दी काव्य की सामजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ॰ 64
[78] डॉ॰ सावित्री चन्द्र शोभा, सामाज और संस्कृति, पृ॰ 64

2.6.4 आर्थिक आयाम :

अर्थ का मानव जीवन में अत्यधिक महत्त्व है। साधारणतया पैसा, धन, सम्पत्ति प्रयोजन को अर्थ कहा जाता है। समाज निर्माण की पृष्ठभूमि में अर्थ की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। आर्थिक शब्द अर्थ शब्द में 'इक' प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। वृहत हिन्दी कोश के अनुसार जिसका अर्थ है – ''अर्थ –संबधी, रूपये पैसे से संबंध रखने वाला, धनी, माली, महत्त्वपूर्ण, वास्तविकता''[79] किसी भी राष्ट्र की सम्पन्नता एवं समृद्धि उसकी आर्थिक व्यवस्था पर निर्भर करती है। किसी राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था जितनी अच्छी होगी वह राष्ट्र उतना ही सुदृढ़ होगा। अर्थ व्यवस्था किसी भी राष्ट्र के रीढ़ की हड्डी होती है। योजनाबद्ध आर्थिक विकास देश की सामाजिक व्यवस्था व प्रगतिशील चेतना को गति प्रदान करता है। जिस प्रकार समाज में व्यक्ति का स्थान निर्धारण उसकी आर्थिक स्थिति के आधार पर किया जाता है उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किसी भी स्थिति उसके आर्थिक विकास पर निर्भर करती है। किसी भी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था जितनी सुदृढ़ होगी, वह समाज उतनी ही अधिक उन्नति कर पायेगा।

आज भूमण्डलीकरण के समय में जहाँ सम्पूर्ण विश्व एक बाजार के रूप में उपस्थित है। वहाँ अर्थव्यवस्था का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। जिससे किसी भी राष्ट्र की सम्पन्नता का प्रत्यक्षीकरण होता है। डॉ॰ शिवकुमार मिश्र के शब्दों में – ''भूमण्डलीकरण वस्तुतः अमेरिकी दबदबे का ही पर्यायवाची है यह स्वाभाविक है। कि दुनिया के देश अमेरिका की उपलब्धियों को देखते हुए उसका अनुसरण करे, अमेरिका ने अकूत धन अर्जन किया है। पूँजी की उपलब्धता बढ़ाई है। नवीनतम प्रौद्योगिकी विकसित किया है और अनगिनत प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं के लिए बाजार बनाया है। फलतः वह आर्थिक समृद्धि की ओर निरन्तर बढ़ रहा है।''[80] इस प्रकार किसी भी राष्ट्र की सम्पन्नता का आभास उसकी अर्थव्यवस्था से होता है। शिव कुमार ने अमेरिका का उदाहरण देकर इसे सिद्ध किया है कि जो आर्थिक रूप से सम्पन्न है आज के समय में उसका ही अनुसरण किया जा रहा है। साहित्य एवं आर्थिक क्षेत्र दोनों के बीच द्वन्द्वात्मक संबंध देखने को मिलता है। आर्थिक स्तर विषमता पैदा करता है और साहित्य समाज में समता लाने का कार्य करता है तथा संतुलन बनाए रखता है।

आधुनिक समय में मानव कोई भी कार्य करने से पहले आर्थिक लाभ के विषय में विचार करता है। आज के समय में पूर्णतः पूँजीतन्त्र पूजनीय होता जा रहा है। भौतिकतावादी समय में अर्थ की महत्ता सांस्कृतिक मूल्यों की अपेक्षा अधिक बढ़ गई है। इससे आर्थिक समय बोध प्रभावित होता है। आज औद्योगिक एवं तकनीकि विकास के कारण अर्थ का महत्व और अधिक बढ़ गया है। इसी अर्थ भेद के आधार पर ही व्यक्ति का समाज में स्थान निर्धारित हो रहा है। आज के बाजार के समय में साहित्य के समय को बनाकर रखना अनिवार्य हो गया है। इस

---

[79] सम्पा॰ कालिका प्रसाद, बृहत हिन्दी कोश, पृ॰ 134
[80] सम्पा॰ बद्री नारायण, साहित्य और समय (लेख) शिव कुमार मिश्र, पृ॰ 55

विषय में डॉ॰ नवल शुक्ल का मन्तव्य है कि – ''बाजार का समय बना रहेगा और साहित्य के समय को बनाकर रखने की जरूरत है। हम रचनाकार बाजार के समय पर एकाधिकार नहीं देना चाह रहे है। हम यह कोशिश करें ताकि साहित्य के समाज को नष्ट होने से बचाया जा सके।'' अर्थ के कारण ही आज के समय में भ्रष्टाचार, एवं सामाजिक अपराध जैसी भयानक समस्याओं का जन्म हो रहा है। आर्थिक प्रतिस्पर्धा के इस समय में अमिर अधिक अमिर और गरीब व्यक्ति अधिक गरीब होता जा रहा है। जिससे आर्थिक विषमता बढ़ती जा रही है। आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्ति को हेय दृष्टि से देखा जाता है। यह आर्थिक विषमता ही बढ़ते सामाजिक अपराधों का कारण है। मनुष्य आर्थिक बोझ का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ता है।

निष्कर्षतः अर्थ जीवन के प्रत्येक पहलु से जुड़ा होने के कारण मनुष्य इससे प्रतिक्षण प्रभावित होता रहता है। इस प्रकार आर्थिक बोध अपने समय को गहनता से प्रभावित करता है। आर्थिक सम्पन्नता से ही सम्पूर्ण विश्व में प्रत्येक राष्ट्र की स्थिति निर्धारित होती है। आर्थिक स्तर ही समाज उच्च, मध्य और निम्न वर्गो में बंटा हुआ है। अतः आर्थिक बोध समय बोध का एक महत्वपूर्ण आयाम है।

2.6.5 अन्य आयाम :

राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक आयामों के अतिरिक्त समय बोध का नियामन करने वाले कुछ अन्य आयाम भी हैं। –

क. वैयक्तिक आयाम :

व्यक्ति समाज की सबसे छोटी इकाई है। इस प्रकार व्यक्तिगत रूप से उसका बोध साहित्य को प्रभावित करता है। किसी भी विषय के प्रति प्रत्येक व्यक्ति का अपना अलग–अलग दृष्टिकोण होता है। एक बुद्धिमान व्यक्ति की दृष्टि सम्पूर्ण समय–खण्डको प्रभावित करती है। उदाहरण स्वरूप रस में लेनिन का एवं भारत में गांधीवादी विचारधारा का पूर्णतः स्थापत्य था। उनकी महानता उनके विचारों से ही स्पष्ट होती है। कोई भी महान व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से समाज में परिवर्तन लाने की क्षमता रखता है। धीरे–धीरे उसका व्यक्तिगत दृष्टिकोण सम्पूर्ण समय खण्ड का दृष्टिकोण बन जाता है। व्यक्ति का दृष्टिकोण समाज का हितैषी भी हो सकता है और उसके लिए समस्या भी बन जाता है। सामाजिक बोध को व्यक्ति का व्यक्तिगत दृष्टिकोण सबसे अधिक प्रभावित करता है।

ख. नैतिक आयाम :

नैतिक 'नीति' शब्द से निर्मित है और 'नीति' शब्द की उत्पति 'नी' धातु से हुई है। जिसका अर्थ है ले जाना, या पहुँचाना''[81] नैतिक शब्द अंग्रेजी के 'मॉर्ल' शब्द का पर्याय है।

---

[81] आचार्य वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी शब्द कोश, पृ॰ 320

जिसका अर्थ है "Science of Moral, Moral Principal rules of Conduct."[82] बृहत हिन्दी शब्द कोश के अनुसार नैतिक का अर्थ है – ''नीति–संबंधी या नीति का।''[83] इस प्रकार नीति का संबंध उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की ओर ले जाने वाले तत्त्वों से है। ये तत्त्व नियमबद्ध होकर नैतिकता को प्रदर्शित करते है। किसी भी समाज के नैतिक मूल्य उसके परिवेश एवं परिस्थितियों पर आधारित होते हैं। इसलिए ये मूल्य समय एवं स्थान सापेक्ष होते हैं। समय एवं परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ ही नैतिक मूल्य भी परिवर्तित होते हैं। प्राचीन समय में जहाँ सत्य, न्याय, मैत्री जैसे विचारों को नैतिक मूल्य माना जाता है। वहीं स्वातन्त्र्योत्तर समय में नए मूल्य विकसित हुए जिनका आधार वैज्ञानिकता, तर्कशीलता एवं भौतिकवादी दृष्टिकोण है। मानव के सभी मूल्य नैतिक मूल्यों से प्रभावित होते हैं। आदिकालीन मानव की नैतिकता आज की नैतिकता से पूर्णतया भिन्न मानी जाती है। किसी भी समाज के उत्थान में उसके नैतिक मूल्य महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं नैतिक मूल्यों पर अपने समय की परिस्थितियों का प्रभाव होता है।

ग. शैक्षिक आयाम :

शिक्षा भी व्यक्ति के बोध को अत्यधिक प्रभावित करती है। किसी भी राष्ट्र की नीवं शिक्षा मानी जाती है। क्योंकि शिक्षा द्वारा ही व्यक्ति को ज्ञान प्राप्त होता है। किसी भी विषय की अच्छाइयों एवं कमियों का मूल्याँकन करना हमें शिक्षा ही सिखाती है। शिक्षा शब्द संस्कृत की शिक्ष् धातु से निर्मित हैं जिसका अर्थ है – सीखना। अंग्रेजी में शिक्षा के लिए 'एजुकेशन' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'एजुकेशन' शब्द 'एजुकेयर' से निर्मित है जिसका अर्थ है – अन्दर से बाहर निकालना तथा प्रशिक्षित करना। संस्कृत में शिक्षा के लिए 'विद्या' शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसका अर्थ है – जानना। शिक्षा के द्वारा ही मानव का बोध विकसित हुआ है। महात्मा गांधी ने शिक्षा को इस प्रकार परिभाषित किया है – ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जो बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा उसकी आत्मा के सर्वोत्तम गुणों की अभिव्यक्ति करती है।''[84] इसी विषय में डॉ॰ जाकिर हुसैन का मन्तव्य है – ''शिक्षा सम्पूर्ण जीवन का कार्य है। वह जन्म के साथ आरम्भ हाती है और मृत्युपर्यन्त चलती है।''[85]

शिक्षा एक व्यापक एवं गतिशील प्रक्रिया है जो मानव में सोचने समझने एवं तर्क करने की शक्ति पैदा करती है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समय की मांग के अनुरूप शैक्षिक बोध में भी परिवर्तन होता रहता हैं अतः मानवीय विकास के लिए शैक्षिक बोध होना अनिवार्य है। शिक्षा द्वारा ही मानव अपने वर्तमान एवं भविष्य को संवार सकता है। आज के समय में शिक्षा की महता को देखते हुए शैक्षिक बोध अनिवार्य है।

---

[82] Edit. Earnest Weakery Annscot, New Green Dictionary London – P - 178
[83] सम्पा॰ कालिका प्रसाद, बृहत हिन्दी कोश, पृ॰ 618
[84] डॉ॰ विजयसूद, आधुनिक समाज में शिक्षा, पृ॰ 9
[85] वही, पृ॰ 10

इस प्रकार शैक्षिक बोध ने मानवीय सोच को समय–समय पर प्रभावित करते हुए उचित दिशा प्रदान की है। आज के लोकतांत्रिक समय इसका महत्व और अधिक बढ़ गया है। शैक्षिक बोध अपने समय को समझने में अपनी सहायक भूमिका निभा सकता है।

घ. साहित्यिक आयाम :

साहित्य समाज को प्रतिबिम्बित करने वाला आइना है। जो एक तरफ समय बोध को प्रभावित करता है। वहीं दूसरी तरफ स्वयं उससे प्रभावित होता है। साहित्य अपने समय की कुसंगतियों एवं विद्रूपताओ को दूर करने एवं लोकमंगल की भावना से ओतप्रोत होता है। डॉ॰ भागीरथ का साहित्य और समाज के विषय में विचार द्रष्टव्य हैं – ''साहित्य और समाज का अटूट और अगाध संबंध है। समाज की जीवन धारा में साहित्य का कमलवत् विकास होता है – वह समाज की धरती पर उगने वाला जीवन का फूल है, साहित्य है, सुगन्ध है, मधुरिमा है, वह रूप सौन्दर्य और प्रगति के प्रभाव का साकार चित्र है।''[86] इस प्रकार साहित्य समाज की अभिव्यक्ति है। इस विषय में डॉ॰ गजानन सुर्वे का अभिमत इस प्रकार है – ''साहित्य मानव जीवन के गत्यात्मक सौन्दर्य की भावात्मक अभिव्यक्ति है।''[87] इनके अनुसार किसी भी समाज की वाणी उसका साहित्य होता है। साहित्य समाज की मानसिकता एवं आत्मिक विकास को प्रकट करने का सूक्ष्म साधन हैं वह समाज को दिशा प्रदान करता है।

समय बोध परिवर्तन में साहित्य महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बदलते समय के साथ ही साहित्य में भी परिवर्तन आता है। इस विषय में डॉ॰ अखिलेश का विचार ध्यातव्य है – ''समय बदला हुआ है, जाहिर है साहित्य भी बदलेगा और बदल भी रहा है।''[88] समय नया हों एवं पुराना समय हो साहित्य की भूमिका अहम् रहती है। इस प्रकार साहित्य समय बोध का एक महत्वपूर्ण आयाम है।

निष्कर्षतः समय बोध अपने समय खण्ड का पूर्णतः यथार्थ बोध होता है। इसमें अपने समय की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का सूक्ष्म चित्र होता है। ये सभी आयाम मिलकर समय बोध को प्रभावित करते है साहित्य भी इसी बोध का प्रतिफल है साहित्य में समय बोध के सभी आयामों का वास्तविक निरूपण होता है। किसी भी राष्ट्र की परिवेश एवं परिस्थितियों का सम्यक् ज्ञान ही उस समय–खण्ड का बोध कहलाता हैं ये सभी आयाम समय बोध को उत्कृष्ट बनाते हैं तथा उस समय की संवेदना का प्रतिनिधित्व भी करते हैं।

---

[86] डॉ॰ भागीरथ मिश्र, काव्य शास्त्र, पृ॰ 287
[87] डॉ॰ गजानन सुर्वे, स्वातन्त्र्योतर हिन्दी नाटकों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ॰ 23
[88] सम्पा॰ डॉ॰ बद्री नारायण, साहित्य और समय (लेख) अखिलेश,पृ॰ 98

2.7 समय बोध और इतिहास बोध :

समय बोध को समझने के लिए इतिहास बोध के साथ उसके संबंध को समझ लेना भी अनिवार्य है। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि इतिहास बोध क्या है? बृहत हिन्दी कोश के अनुसार – ''इतिहास अभी तक घटित घटनाओं या उससे संबंध रखने वाले व्यक्तियों का कालक्रमानुसार वर्णन है।''[89] इस प्रकार इतिहास बोध का अर्थ इतिहास के प्रति साहित्यकार के दृष्टिकोण से लिया जाता है। इतिहासबोध व्यक्ति को मुक्त भविष्योन्मुखी, उदार, आशावादी, समष्टिवादी एवं प्रगतिशील बनाता है। इतिहास बोध को समझने के बाद यह जानना अनिवार्य हो जाता है कि समय बोध को कैसे प्रभावित करता है। साहित्य में इसका क्या महत्त्व है। किसी भी देश के साहित्य की उन्नति में इतिहास का विशिष्ट योगदान होता है। क्योंकि इतिहास के मूल्याँकन के पश्चात् ही व्यक्ति भविष्य की नई दिशाएँ निर्मित करता है।

इतिहास बोध के कारण ही हम अपने देश की उन्नति में बाधक तत्त्वों पर दृष्टिपात कर पाते है। इतिहास की समझ के बाद ही हम अपने वर्तमान एवं भविष्य को समृद्ध बना सकते हैं। वर्तमान को समृद्ध बनाने की सीख भी हमें इतिहास बोध से ही मिलती है। इस प्रकार इतिहास बोध हमें सही दिशा की ओर उन्मुक्त करता है। एक सजग साहित्यकार को यह जानकारी इतिहासबोध से ही मिलती है कि हमारे राष्ट्र की अवनति के क्या–क्या कारण रहे हैं उनका मूल्याँकन कर वह वर्तमान में इन्हें दूर करने का प्रयास करता है। इसकी प्रेरणा हमें इतिहास बोध ही प्रदान करता है। प्राचीन सभ्यता एवं समाज को हम इतिहास बोध के कारण ही समझ पाते हैं। इतिहास बोध का अर्थ केवल अपने समाज की ऐतिहासिक जानकारी मात्र नहीं है बल्कि उस समय का अपने बोध के माध्यम से मूल्याँकन करना भी है। इस विषय में डॉ॰ ज्ञान सिंह मान का मन्तव्य है – ''साहित्य के विकास में इतिहास का उतना ही योगदान है जितना आज के युग का।''[90] किसी भी समाज की अच्छाईयों व बुराइयों का निरीक्षण हम बोध के द्वारा ही कर सकते है। इतिहास बोध जितना गहन होगा हमारा वर्तमान भी उतना ही समृद्ध होगा क्योंकि इतिहास बोध वर्तमान समय की नीवं का कार्य करता है।

भौतिक विकास के फलस्वरूप हमारे ऐतिहासिक मूल्यों का हनन हो रहा है। इसी कारण पारिवारिक, सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों में अस्पष्टता एवं अस्थिरता के दर्शन होते हैं। इन विद्रपूताओं को दूर करने के लिए साहित्यकार को इतिहास का बोध होना चाहिए। तभी वह अपनी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा करने में सक्षम हो सकता है। समय बोध के लिए इतिहास बोध उतना ही अनिवार्य है जितना हिन्दी सीखने के लिए स्वर, व्यंजनों (वर्णमाला) का ज्ञान होना। सदियों से चली आ रही उचित परम्पराएँ व नैतिक आदर्श जो हमें नैतिक इकाई में बांधे हुए हैं उनके टूटने का प्रमुख कारण इतिहास का उचित ज्ञान न होना है। इतिहास बोध से

---

[89] सम्पा॰ कालिकाप्रसाद, बृहत हिन्दी कोश, पृ॰ 147
[90] डॉ॰ ज्ञानसिंह मान, आधुनिक साहित्य दिशा और दृष्टि, पृ॰ 6

ही साहित्यकार को शक्ति व गति प्राप्त होती हैं। जिससे वह समाज में पुराने मूल्यों का पोषण एवं नए मूल्यों का दीपक प्रज्जवलित करने की क्षमता प्राप्त करते है। इतिहास बोध इन मूल्यों की रक्षा के लिए अनिवार्य है। एक रचनाकार तभी काल जयी रचना कर पाता है जब उसे अपने अतीत, वर्तमान में भविष्य की उचित समझ हो। वह वर्तमान को परिप्रेक्ष्य में रखकर उसका मूल्याँकन कर सके। इतिहास का उसे पूर्ण ज्ञान हो और वह भविष्य द्रष्टा हो।

डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान के मतानुसार – ''साहित्य में इतिहास के बोध को अधिक महत्त्व दिया गया है। यदि मानव की नियति को मरकज बनाया गया है, इतिहास की निरन्तरता को तोड़ा गया तो यह दूसरा रूप धारण कर लेता है।''[91] वर्तमान समय में सभी देश अपने को सुदृढ़ बनाने की होड़ में लगे हुए हैं वह यह सुदृढ़ता परमाणु बमों के निर्माण द्वारा प्रदर्शित करते हैं। इतिहास बोध द्वारा ही साहित्यकार युद्धों की समस्याओं एवं उनके परिणामों का वर्णन साहित्य में कर पाता है। अंधा–युग, संशय की एक रात, एक कंठ विषपायी, द्रौपदी, कर्ण आदि नाट्य काव्यों में युद्धों की अनिवार्यता एवं उनके दुष्परिणामों को दर्शाया गया है। यह इतिहास बोध का ही परिणाम है। इसी के कारण हम अपनी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति को वर्तमान समय में जान एवं समझ पाते हैं।

निष्कर्षतः समय बोध एवं इतिहास बोध में समन्वय होना अनिवार्य है। इसके साथ–साथ मानवीय विकास के इतिहास का सम्पूर्ण ज्ञान साहित्यकार के लिए आवश्यक हैं। इतिहास बोध समय बोध का पर्याय नहीं है। अपितु समय बोध के लिए इतिहास बोध अनिवार्य है। क्योंकि किसी भी समय के ज्ञान के लिए उसका ऐतिहासिक बोध अवश्य होना चाहिए। इतिहास बोध जहाँ अतीत के ज्ञान को दर्शाता है समय बोध वहाँ अतीत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों पर दृष्टिपात करता है। अतः इतिहास बोध समय बोध की अनिवार्यता कड़ी है। यह वर्तमान एवं भविष्य की आधारशिला है जिस पर भविष्य में भवन निर्मित किया जाएगा।

2.8 समय बोध और आधुनिकता बोध :

हिन्दी साहित्य कोश भाग–1 में डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा का मन्तव्य आधुनिकता के विषय में इस प्रकार है। – ''सामान्य प्रयोग में 'आधुनिक' शब्द को बहुत दूर तक समय–सापेक्ष मान लिया जाता है। जैसे इतिहास का विभाजन प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक काल में करते समय मान लिया गया है। यह आधुनिक शब्द का सुविधा सम्पन्न और लचीला अर्थ है। जिसके अनुसार अगला काल अपने पूर्ववर्ती की अपेक्षा आधुनिक होता है। परन्तु अपने विशिष्ट रूप में आधुनिकता का अर्थ इससे भिन्न है, आधुनिकता की पहली और अनिवार्य शर्त स्वचेतना है।''[92] आधुनिक शब्द अंग्रेजी के 'मार्डन' शब्द से बना है। जो मूल लेटिन शब्द 'मोड़ो' से निर्मित है।

---

[91] डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान, साहित्य और आधुनिकता बोध, पृ॰ 175
[92] सम्पा॰ धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1, पृ॰ 110

जिसका अर्थ है Modaltey Just now वृहत हिन्दी कोश के अनुसार – ''आधुनिक होने का भाव, एक ऐसा दृष्टिकोण जो मनुष्य की नियति को पूर्व परम्परा से संबंध न मानकर नये युग की स्थितियों के अनुसार परिभाषित करे।''[93] देवेन्द्र इस्सर जैसे विद्वानों ने आधुनिकता को भौतिकवाद के संदर्भ में लिया है। आज के समय में आधुनिकीकरण का अर्थ आर्थिक प्रगति एवं औद्योगिक उन्नति से लिया जाता है। आधुनिकता के संदर्भ में डॉ॰ देवेन्द्र इस्सर का मन्तव्य है – ''यह युग विज्ञान का युग है और विज्ञापन के माध्यम से मिट्टी को सोना करके बेचा जा रहा है। मिट्टी चाहे किसी रूप में हो मनुष्य के रूप में वस्तु या व्यक्ति एक दूसरे का रूप धारण कर लेते हैं। विज्ञान, वित व्यवस्था और विज्ञापन से सामान्य जन जीवन को भौतिक सुख साधनों ने जाल में इस तरह जकड़ लिया है कि विवाहित जोड़े यह प्रश्न पूछने पर विवश है कि उन्हें फ्रिज चाहिए या बच्चा।''[94] आधुनिकता का बोध पहले भी था और अब भी है। डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान के अनुसार ''आधुनिकता एक प्रक्रिया होने के कारण एक से अधिक दौरों से गुजर चुकी है ओर आज भी जारी हैं। इसलिए किसी एक दौर पर ऊंगली रखकर यह कहना कठिन है कि यह आधुनिकता है।''[95] इनके अनुसार आधुनिकता बोध प्रत्येक युग में एक नवीन परिप्रेक्ष्य में उभर कर आता है। डॉ॰ ज्ञान सिंह मान का मत है कि ''आधुनिकता हर युग का एक ऐसा बोध है जो गत्यात्मक चिंतन में ढलकर नए भावों की संभावना बनाता है। हर युग मे प्रतिक्रियावादी जन्म लेते हैं तथा उनके चिंतन को आधुनिकता बोध मान लिया जाता है।''[96]

परिस्थितियाँ एवं परिवेश बदलने के साथ ही चिंतन भी बदल जाता है। परन्तु बोध नदी की धारा के समान प्रवाहमान रहता है। आधुनिकता निरन्तर विकासशील चिंतन का बोध है। इस विषय में ज्ञान सिंह मान का अभिमत है – ''आधुनिकता का एक अर्थ युग की पूँजीभूत प्रवृतियों के मूल्याँकन से भी है। प्रवृत्तियाँ क्योंकि हर युग की, हर काल खण्ड की अपनी अलग–अलग होती है। एक काल खण्ड दूसरे काल खण्ड को प्रभावित करता है। इस प्रकार किसी विशेष युग की आधुनिकता आने वाले समय को अवश्य प्रभावित करती हैं। इसलिए आधुनिकता को गत्यात्मक बोध स्वीकार किया गया है।''[97] इसी को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि ''आधुनिक बोध ने हर स्थिति को बौद्धिक सजगता प्रदान की है।''[98] आधुनिकता गत्यात्मक भाव बोध है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वानों ने आधुनिकता को समय सापेक्ष मानकर इसकी व्याख्या की है। ''वस्तुतः आधुनिकता एक सापेक्ष्य शब्द है। यह मुख्य रूप से दो अर्थो में प्रयुक्त होता है। एक अर्थ समय सापेक्ष्य है, जिसके अनुसार आधुनिक (द माडर्न) एक विशेष

---

[93] सम्पा॰ कालिका प्रसाद, बृहत हिन्दी कोश, पृ॰ 126
[94] डॉ॰ देवेन्द्र इस्सर, साहित्य और आधुनिकता बोध, पृ॰ 3
[95] डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान, आधुनिकता और हिन्दी साहित्य, पृ॰ 19
[96] डॉ॰ ज्ञान सिंह मान, आधुनिक साहित्य की दिशा और दृष्टि, पृ॰ 6
[97] वही, पृ॰ 11
[98] वही, पृ॰ 12

काल की अवधि को बतलाता है। इसी से आधुनिक संकट बोध जैसे शब्द बने है। जो किसी दार्शनिक भाव की भूमिका है। आधुनिकता का यह रूप प्रत्येक युग में बदलता रहता है।''[99] इस प्रकार प्रत्येक युग में आधुनिकता का स्वरूप बदलता रहता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण को आधुनिकता का मुख्य तत्त्व माना जाता है। क्योंकि इसी के कारण समय को समय की गति से समझने का बोध विकसित होता है।

आधुनिक समय की सापेक्षिता आधुनिक मूल्य एवं मर्यादाओं को नयी दृष्टि प्रदान करती है। आधुनिकता मात्र देशकाल का बोध नहीं है अपितु नई परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढालना आधुनिकता है। रामस्वरूप चतुर्वेदी का अभिमत है – ''नवीन परिस्थितियों के संदर्भ में अपना संस्कार करते चलना ही आधुनिकता है।''[100] जबकि डॉ॰ बेचेन ने आधुनिकता को परिस्थिति सापेक्ष स्वीकारते हुए अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं – ''आधुनिकता तो हमारी उस परिस्थिति की उपज है जिस परिस्थिति के परिवर्तन के साथ ही आधुनिकता के विचार भी बदल जाते हैं। इसलिए आधुनिकता की परिभाषा तो एक काल के प्रसंग में ही की जा सकती है, स्वतन्त्र रूप से नहीं।''[101]

समय के साथ–साथ साहित्य भी उस समय खण्ड का अनुकरण करता चलता है। साहित्यकार अपने समय की विचारधारा से प्रभावित रहता है। वह अपने समय की अच्छाइयों, बुराइयों, कुरीतियों, विद्रूपताओं पर गहनता से दृष्टि डालता है। आदिकाल एवं मध्यकाल के पश्चात् एक नई सोच के साथ आधुनिक काल का उदय हुआ। आधुनिक काल में सूक्ष्म अति सूक्ष्म विषयों पर साहित्यकारों की पैनी नजर पहुंची। आधुनिक काल में रचनाएँ मध्यकाल की भांति केवल मनोरंजन हेतु नहीं अपितु समाज की सत्यता को प्रकट करने के लिए लिखी जाने लगी। उत्तर आधुनिक काल में इन समस्याओं के उचित समाधानों को भी साहित्य में स्थान दिया गया। तभी किसी रचना की गुणवता समय के साथ बनी रहती है। जब उसमें समाज के प्रत्येक पहलु पर प्रकाश डाला गया हो। रचनाकार आधुनिकता बोध के कारण साहित्य में आधुनिक समस्याओं को उठाता है। आधुनिकता बोध केवल वर्तमान समय की वस्तुस्थिति का ही बोध कराता है। जबकि समय बोध भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों में समाहित रहता है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि आधुनिकता बोध समय–बोध में सहायता करने वाला एक विशिष्ट पहलू है। जिसे वर्तमान के संदर्भ में लिया जाता है। जबकि समय बोध में इतिहास, आधुनिकता एवं समकालीन बोध तीनों समाहित रहते हैं। आधुनिकता समय बोध को प्रभावित अवश्य करती है। परन्तु ये दोनों अपना भिन्न–भिन्न अस्तित्व रखते हैं आधुनिकता बोध को समय बोध का पर्याय स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

---

[99] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य की नयी दिशाएँ, पृ॰ 101
[100] डॉ॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी नवलेखन, पृ॰ 13
[101] डॉ॰ बेचेन उग्र, स्वातन्त्र्योतर हिन्दी साहित्य, पृ॰ 35

2.9 समय बोध और समकालीन बोध :

समकालीन 'समसामयिक' शब्द का ही पर्याय हैं यह (सम्+समय+इक) 'समय' शब्द पूर्व 'सम्' उपसग्र एवं ':इक' प्रत्यय के योग से बना हैं 'सम्' का अर्थ है – समान एवं समय का अर्थ 'काल' है। इस प्रकार समकालीन का अर्थ है समान काल में होने वाला। बृहत हिन्दी कोश के अनुसार समकालीन शब्द का अर्थ है – ''एक समय में रहने या होने वाला, समसामयिक।''[102] डॉ॰ शेखर के अनुसार – ''जब समसामयिक परिवेश की बात की जाती है तो उस समय की स्थितियाँ, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि का समावेश कर लिया जाता है।''[103] प्रत्येक लेखक एवं कवि अपने समय में समकालीन होता है। आधुनिकता एवं समकालीनबोध में अन्तर दर्शाते हुए डॉ॰ लक्ष्मीकांत का मन्तव्य है – ''समसामयिकता स्थिति विशेष का आयाम है – विचारों मे आधुनिकता होते हुए भी समसामयिक नहीं हो सकते, क्योंकि समसामयिकता का क्षेत्र इतना विस्तृत नहीं है।''[104]

समय बोध समकालीन बोध की अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत क्षेत्र वाला है। समसायिमक बोध इसी का अंश माना जा सकता है। इसी से सरोकार रखते हुए डॉ॰ हुकुमचन्द राजपाल का मत इस प्रकार है – ''समसामयिकता को वर्तमान से उत्पन्न स्थिति विशेष कह सकते हैं समसामयिकता में जहाँ वर्तमान जीवन के प्रतिक्रियाशील होने का भाव है वहाँ अतीत एवं भविष्य दोनों से अलग स्थिति विशेष भी कहीं जा सकती है। समकालिनता में समग्र युग को पकड़ पाना सम्भव नहीं होता।''[105] समकालिनता जहाँ वर्तमान जीवन के प्रति क्रियाशीलता का भाव–बोध कराती है। वहीं समय–बोध समग्रता का बोध कराता है। यह आवश्यक नहीं कि जो रचना समकालीन संदर्भ में लिखी गई हो वह आधुनिक भी हो। समय बोध समकालीन बोध का पर्याय नहीं है। ये दोनों अपना अलग–अलग महत्त्व रखते हैं।

समय बोध की सीमा निर्धारण करना कठिन है। क्योंकि यह काल–सापेक्ष एवं कालजयी है। समय–बोध परम्परा से पोषित एवं वर्तमान युग प्रवृत्तियों से वेष्टित प्रवृत्ति है। यह काल सापेक्ष इसलिए है क्योंकि इसमें प्रत्येक युग की पुरानी एवं नवीन चेतना निहित रहती है। समकालीन काव्य के संदर्भ में डॉ॰ विश्म्भर नाथ उपाध्याय का मत है – ''समकालीन काव्य में जो हो रहा है (विकमिंग) का सीधा खुलासा है। इसे पढ़कर वर्तमान काल का बोध हो सकता है क्योंकि उसमें जीते संघर्ष करते, लड़ते, बौखलाते तड़पते, गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिदृश्य है।''[106] अतः समकालीन बोध का संबंध अपने वर्तमान मे ंचल रही समस्याओं से है। इस विषय में डॉ॰ हुकुमचन्द राजपाल का कथन द्रष्टव्य है – ''प्रत्येक कवि

---

[102] सम्पा॰ कालिका प्रसाद, बृहत हिन्दी कोश, पृ॰ 1168
[103] डॉ॰ शेखर शर्मा, समकालीन संवेदना और हिन्दी नाटक, पृ॰64
[104] डॉ॰ लक्ष्मीकांत वर्मा, आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ, पृ॰ 22
[105] डॉ॰ हुकुमचन्द राजपाल, समकालीन बोध और धुमिल का काव्य, पृ॰ 15
[106] डॉ॰ विश्वम्भनाथ उपाध्याय, समकालीन कविता की भूमिका, पृ॰ 3, 4

समकालीन होता है जिन परिस्थितियों को वह भोगता है जिस मनः स्थिति से वह गुजरता है। उसे अपने अनुरूप लेखनीबद्ध करता है। इसलिए कोई भी कवि अपने युग की समस्याओं एवं अपने युग से स्वयं को पृथक नहीं कर पाता।''[107]

निष्कर्षतः समय बोध का क्षेत्र समकालीन बोध की अपेक्षा अधिक व्यापक है। समकालीन बोध का दायरा वर्तमान समय में ही सिमट कर रह जाता है। समसामयिक बोध में रचनाकार की दृष्टि संकुचित होती है। जबकि समय–बोध में रचनकार दूरदर्शी एवं भविष्य द्रष्टा होता है। जो अपने अतीत से शिक्षा प्राप्त कर वर्तमान में संवारता हुआ भविष्य की ओर अग्रसर रहता है। समसामयिकता समय बोध में ही समायी रहती है।

2.10 समय बोध : साहित्यकार एवं साहित्य

किसी भी समाज में समय एक नहीं होता। एक ही साथ एक ही समय में समाज में बहुत सारे समुदाय अलग–अलग समय बोधों में जी रहे होते है। उदाहरणस्वरूप सीमान्त पर रहने वाले दलित समूह एवं आदिवासी के लिए आज का समय वही नहीं है जो मैट्रोपाल में रहने वाले संभ्रान्त नागरिक का है इसी प्रकार साहित्य में समय की अवधारणा को एक रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। फिर भी विभिन्न क्षेत्रों के रचनाकार अपनी रचनाओं में एक ही समय का बोध कराते है। डॉ॰ बद्री नारायण ने अपनी पुस्तक 'साहित्य और समय' में इसे इस प्रकार व्याख्यायित किया है। – ''भारतीय परम्परवादी एवं आधुनिकतावादी दोनों में ही समय को व्याख्यायित करने में एकरूपता है कि दोनों एक ही समय में रहते हुए भी अनेक टाइमस्पेस को नकारते है। इस प्रक्रिया में परम्परवादी एवं आधुनिकतावादी दोनों ही समाज के प्रभावी सताओं के आधिपत्यशाली बोध को ही एकमात्र बोध मानते हुए शक्तिहीनों के समय बोध को नकारने की कोशिश करते हैं।''[108] इस परिभाषा से सहमत नहीं हुआ जा सकता क्योंकि साहित्य में प्रत्येक वर्ग को चित्रित किया जाता है वह केवल सत्ताधारियों का साहित्य नहीं है। समय के साथ बदलने को ही समय बोध स्वीकारते हुए डॉ॰ विष्णु नागर का मन्तव्य है – ''समय के साथ हम बदलते है। बदलना न चाहे तब भी बदलना पड़ता है – समय के साथ हम इसलिए बदलते है क्योंकि समय बदलता है। कई–कई अर्थो में समय वह समय नहीं है जो कि आज से बीस–तीस, चालीस या पचास साल पहले का था। कुछ तो समय की गति बदल चुकी है और कुछ हमारा बोध भीं। समय तो हमसे सन्तुलन बनाने की कोशिश नहीं करता, हमें ही उससे संतुलन बनाने की कोशिश करनी होती है।''[109] इस प्रकार समय बोध के कारण ही हम समय, साहित्य एवं समाज के साथ तालमेल रख पाते हैं।

---

[107] डॉ॰ हुकुमचन्द राजपाल, समकालीन बोध और धुमिल का काव्य, पृ॰ 28
[108] सम्पा॰ बद्रीनारायण, साहित्य और समय (भूमिका), पृ॰ 72
[109] डॉ॰ विष्णु नागर, अपने समय के सवाल, पृ॰ 147

साहित्य एवं समाज का घनिष्ठ संबंध हैं। साहित्य समय को प्रतिबिम्बित करता है। किसी भी समय के समाज को उस समय के साहित्य से भली भांति जाना जा सकता है। उदाहणस्वरूप हम आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल को साहित्य में पढ़कर ही उस समय के समाज की स्थितियों को समझ पाते है। साहित्यकार एक सामाजिक प्राणी होता है। वह अपने समय के परिवेश, परिस्थितियों के बोध द्वारा ही उसे साहित्य में अभिव्यक्ति दे पाता है। साहित्यकार का अपने युग के प्रति जितना अधिक बोध विकसित होगा, वह उतना ही सजग साहित्यकार होगा तथा उसका साहित्य भी उतना ही जीवंत एवं प्राणवान होगा। इस विषय में मुंशीप्रेमचन्द का मन्तव्य है – ''साहित्य का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और सामान जुटाना नहीं है। उसका बदला दर्जा इतना न गिराइये' वह देशभक्ति एवं राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।'' [110] साहित्यकार समाज का अंग बनकर ही सच्चे साहित्य की रचना करने में सक्षम होता है तत्कालीन परिवेश से प्रेरणा ग्रहण करता हुआ वह समय की मांग के अनुरूप काव्य का निर्माण करता है।

समय बोध के बिना साहित्य महत्त्वहीन एवं निरर्थक है। जिस प्रकार शरीर आत्मा के बिना अर्थहीन है उसी प्रकार समय बोध के बिना साहित्य अर्थहीन है। समय और साहित्यकार के संबंध के विषय मे डॉ॰ सुधीर चन्द्र का मत है – ''अपने समय की बात हो रही है चाहे वो साहित्य या साहित्य की विधाओं के सन्दर्भ में हो, अपना समय हमेशा इतना संश्लिष्ट होता है या लगता है कि उसको समझ पाना असम्भव है। असम्भव किसी भी समय को समझ पाना है लेकिन अतीत को समझने के वक्त यह न समझ पाने का अहसास या तो उस शिद्दत के साथ नहीं होता जितना कि वर्तमान को समझने के संदर्भ में होता है।''[111] साहित्य में समय बोध की अनिवार्यता होती है। बिना उसके साहित्यकार अपने उद्देश्य एवं लक्ष्य से भटक जाता है। सफल साहित्यकार वही होता है जो अपने स्वार्थो को त्यागकर एक जीवंत साहित्य की ओर उन्मुख हो। साहित्यकार अपने तत्कालीन समय बोध से परिचित होने का प्रमाण भी अपने साहित्य के माध्यम से देता है। इस विषय में मुंशी प्रेमचन्द का अभिमत है – ''साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है और उसकी विशाल आत्मा अपने देश बंधुओं के कष्टों से विकल हो उठती है, और इस तीव्र लक्षण में वह रो उठता है। पर उसके रूदन में भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है।'' [112] इस प्रकार साहित्यकार अपने समाज के प्रत्येक पहलु से जुड़ा रहता है।

---

[110] मुंशी प्रेमचन्द, साहित्य का उद्देश्य, पृ॰ 15
[111] सम्पा॰ ब्रदी नारायण, साहित्य और समय, (लेख) सुधीर चन्द्र, पृ॰ 38
[112] मुंशी प्रेमचन्द, साहित्य का उद्देश्य, पृ॰ 25

साहित्य जीवन की समीक्षा है। इसलिए साहित्यकार अपने कर्तव्य के प्रति सजग एवं समर्पित होकर अतीत से प्रेरणा पाता हुआ वर्तमान में दिशा खोजता हुआ भविष्य के लिए सुनहरे सपने का निर्माण करता है। वह भूत, वर्तमान और भविष्य के लिए सुनहरे सपने का निर्माण करता है। वह भूत, वर्तमान और भविष्य को दृष्टि में रखते हुए अपने साहित्य में सम–विषम दोनों परिस्थितियों का चित्रण करता है। इस संदर्भ में डॉ॰ रामविलास शर्मा का कथन उल्लेखनीय है – ''साहित्य में व्यक्ति के भावों की अभिव्यक्ति मिलती है और भावों का समाज से अविच्छेदय संबंध है अतः साहित्य समाज से पृथक होकर जीवित नहीं रह पाता। साहित्यकार समाज से ही भाव ग्रहण करता है। कलाकार जिस सौन्दर्य की सृष्टि करता है वह समाज निरपेक्ष किसी व्यक्ति की कल्पना की उपज नहीं है वरन् सामाजिक जीवन और सामाजिक विकास का उससे घनिष्ठ संबंध होता है।''[113] इस प्रकार समाज प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से साहित्य को प्रभावित करता है। उचित समय बोध के कारण ही साहित्यकार समाज एवं साहित्य के प्रति अपने उत्तरदायित्व को निभाता है। वह अपने समय की अच्छाईयों के साथ ही अपने समय की विसंगतियों, विद्रूपताओं, को भी अपने साहित्य में स्थान देता है तथा अपने विकसित बोध के कारण ही इनका समाधान भी खोजता है।

निष्कर्षतः समय बोध साहित्य एवं साहित्यकार तीनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। अपने समय की उचित समझ एवं ज्ञान के कारण ही रचनाकार एक कालजयी रचना का निर्माण कर पाता है। नाट्य–काव्यों में वह पौराणिक संदर्भो के माध्यम से आधुनिक संदर्भो को व्याख्यायित करता है। इस प्रकार वह अपने उत्तरदायत्वों के प्रति सजग एवं आशावादी दृष्टिकोण व्यक्त करता है। इस प्रकार ये तीनों एक दूसरे से घनिष्ठ संबंध रखते हैं।

2.11 स्वातन्त्र्योत्तर नाट्य–काव्यों का मिथकीय चिंतन

मिथक देशकालातीत है और वैश्विक धरातल पर सभी ऐतिहासिक–पौराणिक अथवा प्रचलित किवंदन्तियाँ सृजन का आधार बन सकती हैं किसी विशेष देशकाल में ऐसे ही मिथक स्वीकार हो सकते हैं। जो जन–मानसिकता में रसे बसे हों, जिनकी ऐतिहासिक – पौराणिक प्रासंगिकता लोकायतन में जानी एवं स्वीकारी जा सकती हो। यदि ऐसा नहीं होता तो ये मिथक अर्थ की जगह अनर्थ पैदा कर देते हैं। यदि मिथक प्रासंगिक नहीं है, वह अपने समय की धड़कन को रूपायित नहीं करता तो वह अनुपयोगी ही माना जाता है। बृहत् हिन्दी कोश के अनुसार – मिथक का अर्थ है – ''प्राचीन पुराकथाओं का तत्त्व जो नवीन स्थितियों में नए अर्थ का वहन करे।''[114] अतः पौराणिक प्रसंगों को आधार मानकर रचनाकार नए मूल्यों को संकेतित

---

[113] डॉ॰ राम विलास शर्मा, आस्था और सौन्दर्य, पृ॰ 11

[114] सम्पा॰ कालिका प्रसाद, बृहत् हिन्दी कोश, पृ॰ – 894

कर आधुनिक समय–बोध को व्यक्त करता है। वर्तमान जीवन के यथार्थ एवं कटुताओं को उभारने के लिए पौराणिक संदर्भो को सशक्त प्रतीकात्मक रूप प्रदान करता है। मिथक जब अपने समय के यथार्थ को फलीभूत करता हुआ परम्परा से जुड़कर लोक चेतना का विस्तार करता है। तभी वह पूर्णतः सफलता प्राप्त करता है। डॉ0 प्रमिला सिह ने मिथक की सार्थकता को इस प्रकार परिभाषित किया है – ''मिथक की सही पहचान और सार्थकता तो संदर्भ सापेक्षता में सोये भटके इंसान को उठाकर खड़ा करने और सावधान करने में है।''[115] मिथकीय आयाम के माध्यम से साहित्यकारों ने उन मूल्यों का अन्वेषण किया है जिसके कारण सम्पूर्ण मानवता को आज के संदर्भ में सार्थकता प्रदान की जा सके।

स्वातन्त्र्योतर नाट्य काव्यों में मिथक (इतिहास–पुंराण) का परिवर्तित रूप देखने को मिलता है। रचनाकारों ने नाट्य–काव्यों में ऐतिहासिक–पौराणिक आधार को महत्त्व अवश्य दिया है अपितु इनकी मूल संवेदना अपने कथ्य के प्रति ही रही है। इन नाट्य–काव्यों में इतिहास–पुंराण का स्वर मंद और कथ्य को प्रकट करने वाली कल्पना का स्वर तीव्र हो गया है। नाट्य–काव्यों में मिथक को साध्य रूप में ना स्वीकार करके साधन रूप में स्वीकार किया गया है। इनमें मिथकीय तत्त्व आधुनिक बोध एवं संवेदना का वाहक बन गए हैं। वस्तुतः जीवन के परिवर्तित मूल्यों को व्यंजित करने के लिए नाट्य–काव्यों में अतीत का आश्रय लिया गया है।

अंधायुग के निर्देश में 'धर्मबीर भारती' का यह कथन इसी तथ्य की पुष्टि करता है कि – ''इस दृश्य–काव्य में जिन समस्याओं को उठाया गया उनके सफल निर्वाह के लिए महाभारत के उत्तारर्द्ध की घटनाओं का आश्रय ग्रहण किया गया है।''[116] जर्जर रूढ़ियों एवं परम्परा के शव से चिपटे हुए लोगों के संदर्भ में प्रतीकात्मक रूप से आधुनिक पृष्ठभूमि और नए मूल्यों को संकेतिक करने के लिए 'दुष्यन्त कुमार' ने शिव–सती के पौराणिक आख्यान का आश्रय 'एक कंठ विषपायी' में लिया है। दुष्यन्त कुमार ने भूमिका में स्वयं इसे स्वीकार किया है – '' इस काव्य–नाटिका में बड़ी बेबाकी से मैनें ऐसे प्रसंगों को उठाया है जो हमारे समय में प्रासंगिक है।''[117] इसी प्रकार नरेश मेहता कृत संशय की एक रात में 'राम और रावण के मध्य युद्ध के प्रसंग के माध्यम से वर्तमान समय की युद्ध एवं शांति की समस्या तथा उससे संबंधित प्रश्नों पर चिंतन किया गया है। डॉ॰ जगदीश गुप्त कृत 'शम्बूक' की रचना प्रक्रिया में रचनाकार का प्रकथ्थन है कि – प्राचीन कथाओं और पौराणिक प्रसंगों की नयी अर्थवता के साथ नये रूप में प्रस्तुत करने का संकल्प निहित था।''[118]

---

[115] डॉ॰ प्रमिला सिंह, स्वातन्त्र्योतर गीति नाट्य–काव्य, पृ॰ 40
[116] डॉ॰ धर्मबीर भारती, अंधा युग (निर्देश) पृ॰ 6

[118] डॉ॰ दुष्यन्त कुमार, एक कंठ विषपायी, (भूमिका) पृ 7

नये ऐतिहासिक एवं पौराणिक नाट्य–काव्यों के विषय में श्री देवेन्द्र इस्सर की भी यही स्पष्ट धारणा है कि – ''आधुनिक जीवन की जटिलताओं को पौराणिक कथाओं और पात्रों के माध्यम से प्रक्षेपित करने का प्रयास नाट्य–काव्यों में दृष्टिगोचर होता है।''[119] रचनाकार इन पात्रों के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के अतिरिकत समकालीन रचनाकार इन पात्रों के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के अतिरिक्त समकालीन संदर्भ में इनके मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करने में सफल हुए हैं। इन नाट्य–काव्यों को आधुनिक समय बोध के संदर्भ में समझा जा सकता है इनमें पात्रों और घटनाओं की नयी व्याख्या द्वारा समकालीन जीवन के नए अर्थ बोध को व्यक्त किया गया है। स्वातन्त्र्योत्तर नाट्य–काव्यों में अतीत की मिथकीय शक्ति का प्रयोग उन्हीं अर्थो में किया गया है जिन अर्थो में वे नये भाव बोध एवं नयी संवेदना को व्यक्त कर सके। इनमें इतिहास–पुराण की घटनाओं एवं परिस्थितियों का एक उपकरण के रूप में निर्वाचन किया है जो वर्तमान समय को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यंजित करने का सामर्थ्य रखता है। डॉ॰ रमेश गौतम द्वारा इस विषय पर अपना मत इस प्रकार स्पष्ट किया गया है। ''इतिहास को केवल सम्भावना के रूप में ग्रहण करते हुए कल्पना द्वारा आधुनिक संदर्भो में इसका उपयोग किया गया है। आधुनिक जीवन के संवेदन को प्रमाणिक तथा विश्वसनीय बनाने के लिए इन नाट्य–काव्यों में अतीत को एक खोल की तरह ओढ़ा गया है। मुख्य वस्तु यह खोल नहीं है वरन् वह अन्तर्द्वन्द्व है जिसे सृजन के संदर्भ में रचनाकार चित्रित करना चाहता है।''[120]

कृत्तिकारों ने पौराणिक मिथकों का आश्रय लेकर इन नाट्य–काव्यों का सृजन किया है क्योंकि 'स्व–संस्कृति' की गरिमा सभी को स्वतः ही अपनी और आकर्षित कर लेती है। नाट्य–काव्य भी पौराणिक कथाओं का वहन करते हुए अपनी प्राचीन संस्कृति एवं मूल्यों के वाहक बने हैं तथा इन मूल्यों को जन–मानस तक पहुँचाने में सफल भी हुए हैं। डॉ॰ प्रोमिला ने इसे इस प्रकार अभिव्यक्ति प्रदान की है – ''मिथकीय कथा प्रसंगों में नये युग बोध को रूपायित करते ये नाट्य–काव्य साधारण मानव के समक्ष आज की ज्वलन्त समस्याओं को रख पाये हैं।''[121] इनमें आधुनिक विसंगतियों को प्रखर वाणी दी गई है।

'धर्मबीर भारती कृत 'अंधा युग' पौराणिकता का वहन करती हुई एक चिन्तनपूर्ण कृति हैं इसका उद्देश्य पुरातनता के आधार पर नवीन मानव को एक नयी दृष्टि प्रदान करता है। यह नाट्य काव्य पौराणिक आख्यान के माध्यम से नवीन भाव बोध और मानवीय मूल्यों को व्यंजित करने का एक सराहनीय प्रयास है। डॉ॰ माया मलिक ने 'अंधा युग' को मिथकीय नाट्य–काव्यों की मणिमाला का सुमेरू कहा है। ''इस रचना में धर्मबीर भारती ने मिथकीय घटनाओं और पात्रों

---

[119] डॉ॰ जगदीश गुप्त, शम्बूक (कवि–कथन) पृ॰ 8
[120] डॉ॰ देवेन्द्र इस्सर, साहित्य और आधुनिक बोध, पृ॰ 93
[121] डॉ॰ रमेश गौतम, मिथक और स्वातन्त्र्योत्तर नाटक, पृ॰ 19

के माध्यम से आज के जीवन और समाज की त्रासदी का वास्तविक निरूपण किया है।''[122] अतः स्पष्ट है कि अंधायुग महाभारत कथांश के आधार पर प्रस्तुत एक पौराणिक कथा है, परन्तु उससे भी अधिक सही यह है कि इसमें आधुनिक समय बोध की अविच्छिन्न धारा सर्वत्र विद्यमान है। लेखक ने युद्धोत्तरकालीन परिस्थितियों के संदर्भ में लिखा है –

'युद्धोपरांत
यह अंधा युग अवतरित हुआ
जिसमें परिस्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब विकृत हैं।''[123]

इसी प्रकार प्राचीनतम 'ऋग्वेद' की कथा को आधार बनाकर लिखा गया ' दिनकर' के उर्वशी नामक नाट्य–काव्य में काम एवं आध्यात्म की समस्या और इनके बीच के संघर्ष को दिखाया गया है इस संघर्ष के माध्यम से मानव के जीवन की अनुभूतियों को विश्लेषित किया गया है। युगों से चली आ रही यह गंभीर समस्या दिनकर को आधुनिक समय के परिप्रेक्ष्य में सत्य प्रतीत होती है – इसमें पीड़ाओं को वैयक्तिक स्तर प्रदान किया गया है –

''गगन भूमि दोनों अभाव से पूरित हैं दोनों के
अलग–अलग है प्रश्न और हैं अलग–अलग पीड़ाएँ।''[124]

श्रीमदभागवत पुराण के चतुर्थ स्कन्द के दूसरे से सातवें अध्याय को आधार मानकर लिखे गए नाट्य काव्य 'एक कंठ विषपायी' के माध्यम से दुष्यन्त कुमार ने आज के समय की राजनीति, भूख, अव्यवस्था एवं युद्ध के कारण उत्पन्न अमानवीयता के तत्त्वों को वाणी प्रदान की है। डॉ॰ सुरेश, वीणा गौतम ने 'त्रिकोण' में उभरती आधुनिक संवेदना' नामक पुस्तक में 'एक कंठ विषपायी' की समीक्षा करते हुए लिखा है – ''वर्तमान जीवन की टूटी–फूटी मान्यताओं से उत्पन्न विकृतियों, मानव होते हुए भी पूंजीवादी मनोवृत्ति, शासकीय अधिकार सुख की मादकता से उत्पन्न मोहाधंकार काल की चिन्तन शाश्वत, सत्यता और युद्धोपरान्त उत्पन्न विभिषिकाओं और स्थितियों की प्रस्तुति ने कृति को आधुनिकता प्रदान की है। इससे महत्वपूर्ण संदर्भ है कि 'एक कंठ विषपायी' जर्जर रूढ़ियों से ग्रस्त परम्पराओं से चली आई मुक्ति की गाथा है।''[125] इस नाट्य–काव्य में जीवन मूल्यों को उद्वेलित और उद्‌बोधित करने की शकित है। भूख जैसी समस्याओं को उद्‌घाटित किया गया हैं। आज सभी भूख से पीड़ित हैं किसी को पेट की भूख है किसी को अधिकार की भूख है और किसी को प्रतिष्ठा की भूख है। सभी अपनी भूख मिटाने के लिए संघर्षरत है –

---

[122] डॉ॰ प्रमिला सिंह, स्वातन्त्र्योतर गीति नाट्य–काव्य, पृ॰ 7 (भूमिका)
[123] डॉ॰ माया मलिक, अंधा युग : रचना धर्मिता के विविध आयाम, भूमिका, पृ॰ 2
[124] डॉ॰ धर्मबीर भारती, अंधा युग (स्थापना), पृ॰ 12
[125] डॉ॰ सुरेश वीणा गौतम, त्रिकोण में उभरती आधुनिक संवेदना, पृ॰ 191

''दुनिया में सब भूखे होते हैं
कोई अधिकार और लिप्सा का
कोई प्रतिष्ठा का। कोई आदर्शो का
और कोई धन का भूखा होता है
किन्तु जीवन की भूख
बहुत कम लोगों में होती है।''[126]

प्रस्तुत नाट्य काव्य में पौराणिक कथा के माध्यम से अपने वर्तमान को, वर्तमान की समस्याओं को देखा गया है और उन समस्याओं के समाधान हेतु भरपूर संकेत भी दिये गए हैं 'आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी' ने अपनी पुस्तक 'नयी कविता' में 'एक कण्ठ विषपायी की मीमांसा करते हुए लिखा है – ''इसके अतिरिक्त अतीत, वर्तमान, परम्परा, आधुनिकता, क्रोध–क्षोभ, आसक्ति मुक्ति, युद्ध या युद्ध नहीं कड़ा मानसिक द्वन्द्व इस काव्य में समानान्तर चला है। द्वन्द्व में विचारों के विविध दाँव पेंच हैं। जिनका संचालन भावों की सघन संवेदन शक्ति द्वारा हुआ है। वस्तुतः यह नाट्य–काव्य समस्याश्रित नहीं है वरन् घटना प्रधान बौद्धिक एवं विचारोतेज है। इसी बौद्धिकता एवं विचारोत्तेजकता के धरातल पर यह नाट्य–काव्य आधुनिकता को स्पर्श करता है।''[127]

'नरेश महेता' कृत 'संशय की एक रात' नाट्य–काव्य राम कथा को आधार लेकर रचा गया हैं जिसमें प्रजा पुरूष राम को आधुनिक प्रजा का प्रतिनिधि मानकार प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक विसंगतियों तथा युग की समस्याओं के मध्यम एक नई दृष्टि खोजने का एक सहरानीय प्रयास इस नाट्य–काव्य में दृष्टिगोचर होता है। जीवन की वर्तमान समस्याओं के साथ–साथ शाश्वत एवं चिरन्तन जीवन मूल्यों का उद्घाटन भी किया गया है। प्रस्तुत नाट्य–काव्य की समस्या आज के दुविधा ग्रस्त मानव की प्रतीत होने लगी है। पुराकथा के माध्यम से कवि ने आधुनिक युग की विडम्बना पूर्ण स्थितियों का मार्मिक अंकन किया है। किस प्रकार आज के समय में मानव अनिर्णय की स्थिति एवं खण्डित व्यक्तित्व की पीड़ा का भोक्ता बना हुआ है। राम के ये उद्गार आज के मानव की पीड़ा को शब्द प्रदान करते हैं :–

''और भाद्रपदी वृष्टि
मुझे भी नारिकेलों सा
अभिषेकित हो जाने दो
अद्यान्तभीग उठने दो
उस आत्मा तक जो खण्डित है
जहाँ केवल क्या हो

---

[126] दुष्यन्त कुमार, एक कंठ विषपायी, पृ॰ 66
[127] आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी, नयी कविता, पृ॰ 70

क्या न हो के ही प्रश्न है''[128]

महाभारत की महायात्रा को 'महाप्रस्थान' नामक नाट्य–काव्य का विषय बनाकर कवि नरेश मेहता ने पौराणिकता के माध्यम से राज्य, राज्य व्यवस्था और उस व्यवस्था के दर्शन को आज के संदर्भ में रूपायित किया हैं। इसमें राज्य–व्यव्सथा की व्याख्या आधुनिकता के संदर्भ में की गई है शासक और सामान्य जनता का भेद प्रायः हर युग की ज्वलन्त समस्याओं में निहित रहता है –

'राज्य व्यवस्था
समाज से स्वतंत्रचेता व्यक्तियों को ही
या तो समाप्त कर दे
या उसे इतना विवश, पंगु बना दे कि
उसका अग्नि–व्यक्तित्व
राज्य व्यवस्था की निरंकुशता को कभी चुनौती ही न दे पाये।''[129]

भारतीय मनासिकता के अक्षांश के प्रतीक राम की कथा को 'प्रवाद–पर्व' में भी नरेश मेहता द्वारा व्याख्यायित किया गया हैं। जिसमें कवि ने आज के मानव की जीवन गत विसंगतियों को उभारना चाहा है। इसके नायम राम आधुनिकता के भावों के संवहनकर्ता बनते हैं। जहाँ वे स्वयं को परिस्थिति जन्य प्रभुता से अलग करते हैं वहाँ वे पाते है कि इनकी महानता की शक्ति सिर्फ संदर्भगत है संदर्भ से अलग हो जाने के पश्चात् उनमें और साधारण मानव की शक्ति में कोई अन्तर नहीं हैं। राम का यह कथन आधुनिकता को स्वर देता है –

''हमारी सबकी शक्ति
केवल संदर्भ की शक्ति है सीता,
संदर्भ की पहचान खो कर
हमारे पास
केवल साधारणतया बचती है।''[130]

राम कथा को ही उपजीव्य मानकर चलने वाली कृति 'शम्बूक' के माध्यम से कवि ने राज्य व्यवस्था के निर्मम प्रश्नों के समक्ष साधारण प्रजा की असहमति, प्रतिवाद और व्यंग्य के स्वर को आधुनिकता के दायरे में प्रखरता प्रदान की है। शम्बूक के प्रारम्भ में डॉ॰ जगदीश गुप्त ने स्वयं आधुनिक समय बोध से सम्पन्न मानव की व्याख्या प्रस्तुत की है '' नया मानव रूढ़िगत चेतना से मुक्त .... स्वातन्त्र्य के प्रति सजग... मानव भाव के प्रति स्वाभाविक सह अनुभूति से युक्त संकीर्णताओं एवं कृत्रिम विभाजन के प्रति क्षोभ का अनुभव करने वाला मानव राजनीति

---

[128] नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृ॰ 30
[129] नरेश मेहता, महाप्रस्थान, पृ॰ 108
[130] नरेश मेहता, प्रवाद–पर्व, पृ॰ 69

सत्ता के आगे अनवरत सक्रिय, सत्यनिष्ठ तथा विवेक सम्पन्न होगा।''[131] अतः मानवीय समता पर प्रतिष्ठित कृति 'शम्बूक' की चेतना का मूल स्वर आधुनिक समय बोध को स्पर्श करता दिखाई देता है जाति पाति के भेद–भाव को मिटाकर कर्म की प्रधानता स्वीकार करना भी आधुनिक मानव के लक्षण है :–

''वर्ण से होगा नहीं अब व्राज
कर्म से ही मनुज कल्याण
कर्म से ही श्रेष्ठता का अधिकार
कर्म सबके लिए सम अधिकार।''[132]

इस प्रकार आज के मानव की पीड़ाओं को, समाज की विसंगतियों एवं विकृतियों को, वर्तमान जीवन में आने वाली कठिनाइयों को पौराणिक नाट्य–काव्यों के माध्यम से प्रतीकात्मक रूप में नई दृष्टि प्रदान की गई है। नाट्य–काव्यों के माध्यम से रचनाकार ने समय बोध, समस्या बोध आंतरिक दृष्टिकोण, समकालिनता, प्रासंगिता, आधुनिकता, वैचारिक मंथन एवं मिथकीय आयामों से संबंधित सूत्रों पर दृष्टिपात करने का सफल निर्वाह किया है। साहित्य, इतिहास के समय से बंधता नहीं, समय में इतिहास का विस्तार करता है। युग से युग को अलग नहीं करता अपितु कई–कई युगों को एक साथ जोड़ता है इस तरह इतिहास के 'आज' और 'कल' उसके लिए 'आज' और 'कल' नहीं रह जाते, समय की असीमता में कुछ ऐसे जुड़े हुए क्षण बन जाते हैं जो जीवन को दिशा संकेत देने की दृष्टि से अविभाज्य हैं। इसी प्रकार नाट्य–काव्य पौराणिक संदर्भो के माध्यम से वर्तमान समय को वाणी प्रदान करने में सफल हुए हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर कवियों की इतिहास–पुराण के प्रति एक विशेष दृष्टि है। जो अपने नाट्य–काव्यों के माध्यम से व्याख्यायित की हैं। नाट्य–काव्यों में इतिहास–पुराण के उन विशिष्ट अंशों एवं सार्थक संदर्भो को प्रस्तुत किया गया है जो समकालीन जीवन की प्रतिक्रिया और संघर्षो को प्रकट कर सके। इन कवियों ने प्राचीनता में एक विशिष्टता की खोज की है। जो तथ्य परक न होकर अपनी अर्थवत्ता में सार्थक क्षणों का वहन कर सके। स्वातन्त्र्योतर नाट्य–काव्यों में पुराणों के प्रति दृष्टिकोण व्यक्ति यथार्थ से जुड़ा है। इसमें अतीत का प्रयोग यथार्थ समय के धरातल पर किया गया है। अतीत के द्वारा आज के मनुष्य की वास्तविक परिस्थितियों को प्रमाणिकता प्रदान की गई है। नाट्य–काव्यों के माध्यम से वर्तमान समय के मनुष्य के जीवन में बनी दरार, तनाव, कुंठाओं, मानव मूल्यों की विघटनात्मक स्थिति का स्पष्ट चित्रण किया गया है। ऐसी स्थिति में अतीत के गौरव का पुराख्यान किया गया जिसे आधार मानकर हम वर्तमान के साथ जूझते हैं। डॉ॰ रमेश गौतम ने मिथकीय चिंतन पर अपने विचारों

[131] जगदीश गुप्त, शम्बूक, पृ॰ 69
[132] जगदीश गुप्त, शम्बूक, पृ॰ 62

को इस प्रकार अभिव्यंजित किया है – ''इतिहास के परिपार्श्व से उन्होंने एक क्षण को उपलब्ध किया है, जो अतीत में भी था, वर्तमान में भी है और भविष्य में भी हो सकता है। अर्थात् इतिहास की स्थूल विभाजक रेखा उस क्षण से टकराकर समाप्त हो जाती है उनके लिए घटनात्मक इतिहास का कोई मूल्य नहीं अपितु उनके बीच एक दुःखता और मार्मिक क्षण है जो समय का अविभाज्य रूप में एक केन्द्र बिन्दु पर वहन करता है।''[133]

अंधा युग, एक कंठ विषपायी, कर्ण, प्रवाद–पर्व आदि पौराणिक आख्यानों के परिप्रेक्ष्य में एक क्षण की उपलब्धि का ही प्रयास है। इन नाट्य–काव्यों को यह क्षण अतीत से मिला, किसी वर्तमान परिस्थति से भी मिल सकता था। स्वातन्त्र्योतर नाट्य–काव्यों में अपनी सजगता का परिचयत देते हुए कवि ने आधुनिकता एवं वर्तमान समय के संदर्भो को पुराण–कथाओं की कसौटी पर कसा तथा आधुनिक संवेदना को समय–बोध की कसौटी पर परखा और मिथकों का उपयोग वर्तमान जीवन की अर्थवता को प्रकट करने के लिए किया। वास्तव में इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि स्वातन्त्र्योत्तर रचनाकारों ने आधुनिक संवेदनाओं और प्रक्रियाओं की अग्नि से तपाकर पौराणिक आख्यानों को नया समय बोध दिया है।

स्वातन्त्र्योत्तर नाट्य–काव्यों में प्राचीन संदर्भो का संकेत रूप में प्रयोग करते हुए कवियों ने पौराणिक आयामों को आधुनिकता का आवरण प्रदान किया है। ये नाट्य–काव्य पुराणों से बंधे नहीं है अपितु इनके माध्यम से रचनाकार ने अपनी वैचारिक स्वतन्त्रता को प्रदर्शित किया है। डॉ॰ रमेश गौतम के अनुसार – ''वास्तव में हिन्दी कवियों ने आज की जीवन्त समस्याओं एवं संवेदनाओं को रूपान्तरित करने के लिए पौराणिक प्रतीकों या ऐतिहासिक प्रसंगों का आश्रय ग्रहण किया है।'' स्वातन्त्र्योतर नाट्य–काव्यों में इतिहास पुराण की मिथकीय शक्ति का धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, दुष्यन्त कुमार, जदीश गुप्त, दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त आदि रचनाकारों ने प्रमुखता से प्रयोग किया हैं। इन सभी ने मिथकों को आज की पृष्ठभूमि में व्याख्यायित करने का प्रयत्न किया है। इनके परिवेश बोध का नहीं अपितु गहराई के साथ वर्तमान संदर्भो की सूक्ष्मता को मूल्यागत संघर्षो से सम्पृक्त करके प्रदर्शित किया गया है।

उपर्युक्त रचनाकारों तथा आलोचकों के वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है कि पौराणिक आधार ग्रहण करने पर स्वातन्त्र्योत्तर नाट्य–काव्यों का लक्ष्य आधुनिक जीवन स्थितियों का प्रदर्शन करना ही रहा है। इस प्रकार ये मूलतः मिथकीय कलेवर में आज के नाट्य–काव्य हैं। जिनमें अतीत के माध्यम से व्यक्ति एवं समाज के विभिन्न क्षेत्रों से संबधित युगीन समस्याओं को प्रतिध्वनित किया गया है। समय यथार्थ की यही सांकेतिकता इन पौराणिक कथाओं को मिथक नाट्य–काव्यों की श्रेणी में ले आती है। वर्तमान जीवन की समस्याओं एवं द्वन्द्वों का तीव्रानुभूति प्रदान करने के लिए पौराणिक कथानकों को प्रतीकात्मक शैली में रूपान्तरित किया गया है।

---

[133] डॉ॰ रमेश गौतम, मिथक और स्वातन्त्र्योतर नाटक, पृ॰ 24

क्योंकि जीवित चरित्रों की अपेक्षा प्रतीकात्मक पात्र नाट्य–काव्यों में निहित लक्ष्य का उद्घाटन करने में अधिक सफल होते हैं। ये रचनाकार प्राचीन कथा सूत्रों का आधार लेने पर भी अपने वर्तमान समय एवं परिवेशगत संदर्भ से जुड़े रहते है।

निष्कर्षतः अतीत घटनाओं एवं पात्रों का आश्रय ग्रहण करके संवेदनशील दृष्टिकोण के साथ कवि ने अपने समय की अनुभूत समस्याओं को प्रदर्शित किया है। वस्तुतः स्वातन्त्र्योत्तर नाट्य–काव्य अपने वस्तु संदर्भ में पुराणों को समेटे हुए भी वर्तमान जीवन पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं। इनकी प्राचीनता नयी संवेदना से संपृक्त होकर अपना रूप त्याग देती है। इसलिए नाट्य–काव्यों का पौराणिक तत्त्व एक प्रतीक बनकर प्रेक्षक के सामने मिथक का प्रभाव छोड़ जाता है। जो परम्परा से जुड़कर अपनी विश्वसनीयता और प्रमाणिकता सिद्ध करते हैं तथा दूसरी ओर संकेतिकता के माध्यम से पुराण के आवरण में वर्तमान समय से जुड़े रहते हैं।

निष्कर्ष :

समय बोध 'समय' एवं 'बोध' द्वारा निर्मित समन्वित 'शब्द युग्म' है। समय की अवधारणा अत्यधिक प्राचीन है। हमारे पौराणिक ग्रंथों में भी समय का वर्णन मिलता है। समय को परिभाषाओं में बाँधना अत्यन्त कठिन है वह पवन की तरह अदृश्य होते हुए भी घटना, व्यक्ति एवं परिस्थितियों के माध्यम से प्रत्यक्ष होकर हमें प्रभावित करता है। बोध शब्द का अर्थ ज्ञान, समझ व जानकारी के रूप में लिया जाता है। इसलिए समय बोध अपने परिवेश परिस्थितियों की विशेषताओं एवं विद्रूपताओं की गहन जानकारी एवं विमर्श शक्ति है। समय परिवर्तन के साथ–साथ समय बोध भी बदलता रहता है। नवीनता, आधुनिकता, परिवर्तनशीलता एवं समसामयिकता समय बोध के मानक तत्त्व है। समय बोध एक परिवर्तनशील प्रक्रिया है। इसी परिवर्तनशीलता के कारण प्रत्येक समय–खण्ड का बोध परिवर्तित होता रहता है। उदाहरणस्वरूप स्वतन्त्रता पूर्व समय बोध का स्वरूप स्वातन्त्र्योतर समय बोध से भिन्न है।

सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक ये सभी आयाम समय बोध को प्रभावित करते हैं। हमारा परिवेश एवं परिस्थितियाँ भी निरन्तर समय बोध को प्रभावित करती रहती है। समय बोध का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। इतिहास बोध, आधुनिकता बोध एवं समसामयिक बोध समय बोध में सहायक है। इनके बोध के बिना समय बोध नहीं किया जा सकता। जहाँ समय बोध का अर्थ व्यापकता से लिया जाता है वहीं आधुनिकता इतिहास एवं समसामयिकता संक्षिप्त अर्थ प्रकट करते हैं।

उचित समय बोध के फलस्वरूप ही कोई भी साहित्यकार सर्वोत्तम साहित्य का निर्माण कर पाता हैं विकसित बोध के कारण ही अपने समाज की विसंगतियों एवं विद्रूपताओं को गहनता से देखता है एवं अपने साहित्य के माध्यम से पाठक में उनसे जूझने की समझ पैदा

करता हैं। साहित्य साहित्यकार एवं समय बोध तीनों में धनिष्ठ संबंध है। बदलते परिवेश एवं परिस्थितियों के फलस्वरूप समय बोध एवं साहित्य भी परिवर्तित होता रहता है।